यत्किञ्चित स्व-अभिन्नस्वरूप भूले भटके जीवो की सेवा में जूझ पडने की उत्कृष्ठ प्रेरणा हुई और राजस्थान प्रान्त के जोधपुर, बीकानेर, जयपुर, सीकर आदि शहरो व अन्तरस्थ नगरो, गावो, ढाणियो मे तथा कलकत्ता जैसी महा-नगरी मे विचर कर मुमुक्षुजनो को सत्पथ प्रदर्शित करना, उनका जीवन-लक्ष्य बन गया। इस लक्ष्याधीन स्व-शरीर के स्वास्थ्य की उपेक्षा करते हुए भी वे अत्यन्त आदर्श त्यागमय जीवन व्यतीत करते हुए सभी सत्सगियो को सदैव सन्मार्ग दिखलाते आ रहे है।

आपने स्व-लक्ष्य से प्रेरित होकर उत्कृष्ठ और वेदान्त ग्रन्थो की जन साधारण बोधार्थ टीकाये लिखी है। परम पूज्य ब्रह्मनिष्ठ पं पीताम्बर जी कृत ख्याति प्राप्त **"श्री विचार चन्द्रोदय"** की टीका एव संत अनाथदास जी रचित **"विचारमाला"** की टीका को मुमुक्षुजनो ने बहुत आदर प्रदान किया। तदुपरात स्वकृत **"विचार बिन्दु"** व **'विचार दीपिका"** ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है और अब यह पञ्चम पुष्प **"स्वरूप-स्थिति"** आपके हाथो मे है। इस कृत्ति मे महानुभाव ने बडी ही सुगम, हृदयस्पर्शी व मार्मिक शैली से प्रत्यक् ब्रह्माभिन्न स्वरूप-स्थिति का अति सुन्दर चित्रण किया है। अन्य जिज्ञासु उपयोगी सामग्री भी इसके साथ सकलित की गई है।

मेरा विश्वास है कि उक्त पुस्तकस्थ अनुभव उद्गारो से परमार्थ-पथिको को अलौकिक लाभ अवश्यमेव होगा और अज्ञानवशात् उन्हे तुच्छ सत्ताशून्य दु ख-योनि विषयो मे जो सुख भ्रम हो रहा है वह अत्यन्त निवृत्त होकर वे अपार ब्रह्मानन्द-स्वरूप मे ि-थत हो सकेंगे। अत श्रद्धालु पाठको से नम्र निवेदन है कि दत्तचित होकर किन्ही शास्त्रज्ञ अनुभवी महात्माओ के माध्यम से इन पुस्तको का अध्ययन कर स्वाध्यायारूढ होवे।

इन महापुरुष का प्रवचन जिन पुण्यात्माओ ने श्रवण किया है वे इन त्याग-मूर्ति के अनुभव युक्तिकौशल्य के विषय मे परिचित ही है। अपरिचित स्वजन वृन्द बोधार्थ सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

योगीकुल दिवाकर, राजाधिराज, श्री आचार्यप्रवर श्री भर्तृहरि (योगीराज सिद्ध श्री विचारनाथ जी) के नाम से नाथ सम्प्रदाय की ख्याति हुई उनमे बारह पंथो मे से "**वैराग्यनामा पंथ**" के पथिक महान् योगेश्वर अनन्त श्री विभूषित श्री बनानाथ जी महाराज हुए। उनके शिष्य राजस्थान प्रसिद्ध राजगुरु "**हिज् होलीनेस**" पद से अलकृत योगेश्वर श्री नवलनाथजी महाराज हुए। आचार्य चरण के प्राणस्वरूप प्रिय शिष्य निगमागम निष्णात वीतराग-भय-क्रोध मारवाड़ प्रसिद्ध योगी श्री उत्तमनाथजी महाराज हुए। प्रात. स्मरणीय अनन्त श्री गुरुवर के पक्षस्वरूप महान् प्रभावशाली उभय शिष्य योगी श्री विवेकनाथ जी महाराज एवं आचार्यचरण श्री वैराग्यनाथजी महाराज हुए। उपरोक्त महानुभावों की ज्ञानगरिमा से शोभायमान जोधपुर नगर स्थित सिद्ध श्री नवलेश्वर पीठाधीश योगी श्री वैराग्यनाथ जी महाराज के शिष्य इस ग्रन्थ के लेखक योगी श्री पूर्णनाथ जी महाराज है। इनके पूर्वाश्रम का परिचय यहाँ पर नही दे रहे हैं।

हमारे इष्टदेव साम्बसदाशिव सद्गुरुदेव से कर बद्ध प्रार्थना है कि वे इन महान् विभूति को जिज्ञासुओ के कल्याणार्थ दीर्घायु व स्वास्थ्य प्रदान करें। इति शुभम्।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पशयन्तु मा कश्चिद् दु ख भाग्भवेत ।।

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रक्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरंकृतज्ञं दृढ़सौहृदं च सिद्धि स्वयंयाति निवास हेतोः ।।

"श्री नवलेश्वर महादेव विजयतेतराय्"

निखिल चराचर अभिन्नस्वरूप,
भवदीय
योगी सोमनाथ

"ॐ श्री गुरु परमात्मने नम"

नम्र निवेदन

गणंजयो गणपति हेरम्बो धरणीधरः ।
महागणपतिर्लक्षप्रदः क्षिप्रप्रसादनः ।।
अमोघ शक्तिरमितः मन्त्रश्चिन्तामणि निधि ।
सुमङ्गलो बीजमाशापूरको वरदः शिवः ॥
काश्यपो नन्दनो वाचा सिद्धो ढुण्ढि विनायकः ।। (गणेश पुराणे)

राम नाम जपतां कुतोभयम्, सर्वतापशमनैक भेषजम् ।
पश्यतात मम गात्र सन्निधौ, पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ।।

हूँ पर हूँ लादू नहीं, अरु तूँ में भी हूँ नांय ।
हूँ तूँ दोनो से परे, सो हूँ सबहि सब मांय ।।

सद्गुरुओ के प्रसाद फलस्वरूप अध्ययनकालीन विरचित पद्यो मे का एक भाग **"विचार दीपिका"** ग्रन्थ मे भजनमाला के रूप मे प्रकाशित हो चुकने पर शेष कवितायें, छद आदि प्रस्तुत ग्रन्थ विचार **"स्वरूप-स्थिति"** मे सकलन किये है। ये मुख्यतया **"स्व-स्वरूप"** अनुसधान सम्बन्धित ही हे और अद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादक है। फिर भी हमारी दृढ मान्यता है कि प्रभु शरणागति के अवलम्बन के बिना मार्ग सिद्धि अति दुष्कर है। अत **"शरणागति महिमा"** नामकी रचनाये भी इस पुस्तक मे प्रकाशित की गई है।

प्राय. जिज्ञासु **"प्रारब्ध एव पुरुषार्थ"** के विवेचन मे अपने आपको असमर्थ पाते है। यह विषय है भी बहुत गहन। इस विषय पर हमने सत अनाथदास जी कृत **"विचारमाला"** पर जो व्याख्या की थी उसके द्वितीय सस्करण मे पृष्ठ ११६ पर बत्तीस (३२) छद छपवाये थे। उसके आगे के छदो को उपयोगी जानकर प्रस्तुत पुस्तक मे समाहित कर लिया है। इसके अतिरिक्त साधक उपयोगी कुछ अन्य गद्य-पद्य सामग्री का सकलन **'बिखरे मोती"** के अन्तर्गत कर इसी पुस्तक मे शामिल करा है।

हमारा विश्वास है कि साधक जिज्ञासु निष्काम कर्म से शुद्ध किये हुए व हरि-भक्ति-रूपी उपासना से समाहित किये हुए चित्त द्वारा उस परमात्मतत्त्व के बोध के लिये कटिबद्ध होकर अगर श्रद्धापूर्वक निष्ठा व लगन सहित तत्त्वानुसंधान में लग जावे तो सूक्ष्मातसूक्ष्म तत्त्व उनके लिये अति निकट व सुलभता से प्राप्य है। अस्तु कठोपनिषद १/३/१४ अनुसार

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गपथस्तत्कवयो वदन्ति ।।"

उठो, जागो और महापुरुषो के समीप जाकर उनके द्वारा तत्त्वज्ञान के रहस्य को समझो। कविगण इसे तीक्ष्ण क्षुर (उस्तरे) की धार के समान अत्यन्त कठिन मार्ग बताते है। परन्तु कठिन मानकर हताश होने की आवश्यकता नही। भगवान् मे चित्त लगाने से भगवत्कृपा द्वारा मनुष्य सारी कठिनाइयों से अनायास ही तर जाता है।

हमारे गुरुभाई श्रद्धेय ब्रह्मनिष्ठ योगी श्री सोमनाथजी, श्री नवलेश्वर सिद्ध मठाधिपति ने 'आमुख' मे हमारी स्तुति मे कई विशेषणो का प्रयोग किया है। हम अपने आपको उनके योग्य अधिकारी नही मानते। ये सब उनके अतिशय प्रेम का ही प्रतिफल है। हम सर्वदा की भाँति उनके आभारी हैं।

पुस्तक मुद्रण मे कतिपय अशुद्धियो को पाठक वृंद शुद्धि-पत्र मे देखकर शुद्ध कर लेने की कृपा करे। मात्राओ के खण्डित हो जाने से एव अनुस्वारो की अशुद्धता तथा अर्धविराम (,) चिन्हो आदिपर पाठक स्वय ध्यान कर लेवे ऐसी प्रार्थना है।

ॐ शान्तिः। शान्तिः।। शान्ति ।।।

योगी पूर्णनाथ

श्री नवलनाथ जी का मठ,
उच्चन्यायालय मार्ग,
जोधपुर

भाद्रपद शुक्ला ५ सवत् २०३६,
(ऋषि पचमी) २७.८.१९७९

मंगलाचरणम्

श्री नवलनाथेश्वर स्त्रोत्रम् ।।

श्री नवलमहेशं नानावेशं चोत्तमदेश नौमीशम् ।।टेर।।
जगत्प्रकाशं निखिलावास भवभयदारं पारेशम् ।
गंगाशोभितजटाकलापं गगनविलासं गौरीशम् ।।१।।
योगीन्द्रैरभिपूजितपादं तारणकारण रामेशम् ।
करुणाकार मयपुरहारं धृतसुखवासं कैलाशम् ।।२।।
जयजयकृतशेषं शिवामहेशं ध्यानधरेशं भूतेशम् ।
विद्याऽलयकारं विश्वविकाशं काशीवासंविश्वेशम् ।।३।।
परमपुनीतं निखिलगुणीतं वाराणसीशं तारेशम् ।
ब्रह्मकृतीतं सुरनरगीतं तारस्वरूपं परमेशम् ।।४।।
द्वादशशुभलिंगैः पूजितदेहमुमामहेशं योगीशम् ।
कुण्डलिकुण्डलभूषणभूषित सर्वशुभागं ध्यानेशम् ।।५।।
जगद्विचित्रं करधृतडमरू मुद्रावेशं सोमेशम् ।
भूतगणार्चित भूतविभूषित मगलकारिकृतवेषम् ।।६।।
प्रणतसुखकारं कृपाविशालं त्रिशूलधारं भीमेशम् ।
भयकृद्भूयनाशं धनपतिदासं मायापार व्योमेशम् ।।७।।
अघटितमुद्राघटनाकारं शोभितरूपं नृतवेशम् ।
विबुधविशेषं विविधसुदेश परमाकारं सोंकारम् ।।८।।
नेत्रत्रयधारं शोभित भालं चन्द्रविशालं स्तुतवेशम् ।
नानानगवासं सुकृतविलासं प्रीतिनिवासं धारेशम् ।।९।।
गणपतिषण्मुखलालितदेहं चित्रविचित्रं भूतेशम् ।
वरदवरेण्यं परमावेद्यं रूपाभेद्यं सुखवेद्यम् ।।१०।।
यंरंलंवंवर्णविचारं वर्णसुचारं वर्णेशम् ।
तारणकारणमुमया सहितं लिंगविशेषं स्तुतवेशम् ।।११।।
स्तुतमिमां प्रयतः पठते जनो भवति तस्यसुखं परमाद्भुतम् ।
जगतिकीर्तिमनोरथवैभवत्विहपरत्र जनस्य शिवालयम् ।।

इति श्री नवलनाथेश्वरस्तोत्र समाप्तम् ।।

।। श्रीरस्तु ।। ॐ तत्सत् ।।

विचार -

स्वरूप-स्थिति

यस्मिन्ब्रह्मणि कल्पितं जगदिदं येन धृतं सर्वदा ।
संकल्पेन तु ललियवै प्रलये सर्व विलीनीकृतं ।। लीलयैव
यस्मिन्नेव त्रिपंच रूप प्रभवं व्यापार संसिद्धये ।
वन्दे तं खलु निर्गुणं गुणयुतं शक्तयासहानन्ददं ।।

श्री वैराग्य गुरोरहं चरणयोः नत्वा स्वरूपस्थिति ।
संक्षेपेण विचार्य शास्त्र सकलं लाभाय मोक्षार्थिणां ।।
निर्वीजमभिसंदधामि सहजं मत्यानुसारेण हि ।
भाषा छन्दो विरच्यात्र पठिते शार्दूलविक्रीडितम् ।।

आत्म अभिन्न विश्व है सारा, जिन प्रकाश नेत्रों में ।
व्यापक जो क्षेत्रज्ञ देखता, एक सभी क्षेत्रो में ।।
आत्म-बुद्धि, व्यवहार काल में भी, न देह में जिसकी ।
पूर्णनाथ निज रूप व्यवस्थित, है दृढ़ प्रज्ञा उसकी ।।१।।

अत्रिकाल बाधित स्वरूप, है सदा एक रस होकर ।
अहं इदं निर्दिष्ट द्वैत नानात्व भाव को खोकर ।।
अस्ति नास्ति से परे, शून्य में जिसका बोधखिला है ।
पूर्णनाथ आरोप मात्र यह, उसको ब्रह्म मिला है ।।२।।

ब्रह्म रूप वह पूर्ण अचल सम शान्त हुआ रहता है ।
किंचित भी अतिरिक्त नहीं, जग में उससे रहता है ।।
नाम रूप से रहित हुआ, आनन्द मात्र रह जाता ।
पूर्णनाथ अविगत, फिर उसका कथन कहाँ बन पाता ।।३।।

सत उसकी अनुभूति, अगर है ऐसे लक्षण वाली ।
यह विचित्रता प्रकृति जगत की, कैसे प्रकट निराली ।।
जीव. जीव, जड़ जीव, जीव, ईश्वर, का अन्तर कैसे ।
पूर्णनाथ सुख दुख के अनुभव क्यों होते हैं ऐसे ।।४।।

सर्व प्रथम यह प्रश्न ब्रह्म यदि एक, दीख क्यों नाना ।
क्या सच्चा है, अपर रचित या स्वतः विकृत बन जाना ।।
इच्छा ज्ञान कर्म जीवों के कैसे नियमित होते ।
पूर्णनाथ व्यवहार सभी, त्रिपुटी से कैसे होते ।५।।

जग असत्य ही है, तो सुख दुख भी सच्चे क्यों दीखे ।
ये भी मिथ्या यदि, तो होते कैसे कर्म सरीखे ।।
कर्म प्रकट ही सत्य, कहें यदि हठ से इनको झूठा ।
पूर्णनाथ मिथ्या से मिथ्या, फैले दृश्य अनूठा ।।६।।

कर्म असत यदि, किमि होता चौरासी आना जाना ।
चौरासी भी असत, असत तब श्रुति पुराण भी नाना ।।
सुर पर्यन्त चराचर सारे, पड़े घोर बन्धन में ।
पूर्णनाथ किसके छल का परिणाम प्रकट हरछन में ।।७।।

ब्रह्म सदा निष्क्रिय है, होती अतिशय झूठी माया।
ऐसी अकथ अलौकिक रचना, कौन बीच में लाया ।।
कुछ स्वरूप को प्राप्त हुए, अक्षय आनन्द समाते।
पूर्णनाथ वाकी कैसे चौरासी आते जाते ।।८।।

जाग्रत के व्यवहार, नियमतः जाग्रत में होते हैं।
स्वप्नोचित व्यवहार, स्वप्न में सुख दुखमय होते है ।।
निद्रा सुख सामान्य रूप से, सबही अनुभव करते।
पूर्णनाथ किमि असत, नित्य क्रमशः ये आते रहते ।।९।।

वीर्य और रज मिश्रण निर्मित देह अलौकिक पंजर।
पड़ा जीव वश कर्म पूर्वकृत, प्रभु द्वारा या अन्दर ।।
कोटि कोटि संकल्प उठाता फिरता निशिदिन जग में।
पूर्णनाथ अनुभव है सबका, पड़े सभी क्या भ्रम में ।।१०।।

कृतियाँ व्यास वशिष्ठ प्रभृति की, प्रस्तुत ज्यों की त्यों हैं।
स्मृतियाँ सूर विजेताओं की, फिर ये झूठे क्यों है ।।
पड़े हुए भग्नावशेष है चिर अतीत के साखी।
पूर्णनाथ मिथ्या कैसे, अमरों की संचित राखी ।।११।।

कहो तुम्हीं वादी, यदि जग के दृश्य सत्य सारे हैं।
तुमसे भी बढ़कर सच्चे तो भ्रम के ही मारे है ।।
भ्रम विशेष का अनुभव करते सत ज्यों ही पा जाते।
पूर्णनाथ भ्रम त्यागि हर्ष से, सत को हृदय लगाते ।।१२।।

चमगादड़ को दिनमें सूरज क्या प्रकाश देता है ।
क्या अपार सूरज प्रकाश को बादल ढक लेता है ।।
कमल रोग होने पर क्या चाँदी पीली हो जाती ।
पूर्णनाथ कटु सिता बने क्या जीभ विकृति जब आती । १३।।

चढ़े रेल पर कहो नहीं वृक्षादि भागते दीखे ।
कामुक को क्या विषय जगत, किंचित भी लगते तीखे ।।
चक्र नृत्य से थककर बालक, जब पृथ्वी पर गिरते ।
पूर्णनाथ वृक्षादि पास के, तो क्या चक्कर करते ।।१४।।

दिग्भ्रम होने पर, क्या रवि विपरीत दिशा में ऊगे ।
जादूगर की चिड़िया क्या सच ही मुक्ता फल चूगे ।।
रंग मंच के अभिनेता आते क्या चित्र पटल पर ।
पूर्णनाथ क्या सटा हुआ है अम्बर अवनी तल पर ।।१५।।

स्वप्न सिनेमा जादूनगरी क्या स्वरूप से सत है ।
कहो गगन में नीलवर्ण मिश्रण तुझ को अभिमत है ।।
रची तूलिका से किस पावस ऋतु को गौरमदाईन ।
पूर्णनाथ समझोगे कैसे माया मिथ्या डाइन ।।१६।।

रज्जु सर्प सीपी चाँदी औ ठूँठ पुरुष क्या होते ।
जिन्हें देख विषयानुसार सब भगते हँसते रोते ।।
भित्ति लिखे लश्कर में होती क्या रण की अभिलाषा ।
पूर्णनाथ क्या असत समझते बालक खेल तमाशा ।।१७।।

नाना पात्र हुए भी क्या मिट्टी ताम्रादिक नाना ।
वस्त्राभूषण विविध सूत्र सोना सच बहु बन जाना ।।
काष्ठ लौह क्या एक नहीं यदि अस्त्र मंच बहुतेरे ।
पूर्णनाथ कारण भी बहु क्या, हों यदि कार्य घनेरे ।।१८।।

रेल रेडियो चक्की पंखे नाना इंजन चलते ।
कुएँ सिनेमा ट्राम मिल्स बहु हीटर लट्टू जलते ।।
आकृतियों में भेद हुए कृतियाँ विभिन्न गुण वाली ।
पूर्णनाथ विद्युत विभिन्न क्या सत्ता देने वाली ।।१९।।

दृश्य असंख्य स्वप्न के तो भी द्रष्टा एक नहीं क्या ।
सर्व योनि बहु क्षेत्र, एक होता क्षेत्रज्ञ नहीं क्या ।।
करण विभिन्न क्रियाये न्यारी, कर्त्ता एक नहीं क्या ।
पूर्णनाथ है भोग विविध पर, भोक्ता एक नहीं क्या ।।२०।।

विविध पदार्थ योग से, है बहु स्वाद प्रतीत मिठाई ।
क्या चीनी का निजी तत्व माधुर्य गया बिलगाई ।।
विषय जात शब्दादि भेद से रस अभिव्यक्ति अनेकों ।
सम्भव क्या पार्थक्य, नाथ पूरण आनन्दपने को ।।२१।।

ऐसे भ्रम के विषय कोटि, जो प्रकट सत्य इव भासे । भासे
पर नितान्त निर्मूल शास्त्र अनुभव यदि विज्ञ प्रकासे ।।
मान रहा हूँ डर से यह, पर भीतर श्रद्धा रोती ।
पूर्णनाथ सत असत द्वन्द्व में, कुण्ठित प्रज्ञा होती ।।२२।।

कछु क्रम बतलावै भ्रम कछु गावै, बतलावै कछु उभयगती ।
कछु शून्य बखानै जग नहिं मानै, पहिचानै नहिं जगतपती ।।
कछु आलय धारा कछु अणु सारा अनुसारा कछु कर्म किये ।
कछु तनहिं सराहत इतर न मानत, पूरणनाथ न डरत हिये २३
कछु ईश्वर माया जीव निकाया भटकाया पुरुषार्थ करे ।
कछु चेतन रूपहिं प्रकृति निरूपहिं कहत जीव नहिं संग करे ।।
माया दुहुँ भाँती नहिं कहि जाती,दिखलाती सत असत सभी ।
पुनि किहिं मति मानउँ किहि सत जानउँ
पूर्णनाथ मति जात थकी ।।२४।।
कछु जोग सिखावत सिद्धि बतावत दिखलावत बहु प्राण कला
कछु भजन करावत नाम जपावत गुन गावत वसुदेव लला ।।
कछु ध्यान करावत वृत्ति टिकावत अगुण उपासन गाइ रहे ।
यह बुद्धि न आवत थाह न पावत पूर्णनाथ सच कौन कहे २५
निज देह विचारे सुख दुःख सारे गुण न्यारे करि देखि लिये ।
मायागति चीन्हें दुःखमति कीन्हें उठत वेग अति मोह हिये ।।
छन छन दिन बीतत द्वन्द्वन सीझत सत उपाय नहिं दीख रही ।
यह कौन बताये मरत जियाए, पूर्णनाथ धृति छूट रही ।२६।
हे मुमुक्षु यदि नहीं समाहित हों ऐसी शंकाये ।
तुम निस्तब्ध खिन्न मन बैठोगे तज सब आशायें ।।
मन की ग्लानि पुरुष को पथ पर कभी न बढ़ने देती ।
पूर्णनाथ धीरज साहस को नहीं पनपने देती ।।२७।।

ईश्वर अभिमुख, तुम विवेक को अपने ही, आदर दो ।
मत-मतान्तरों के सन्मुख, उसकी स्वतन्त्रता कर दो ॥
वह प्रकाश निर्बल नियमों को नहीं ठहरने देगा ।
पूर्णनाथ सत्पथ पाकर फिर शरण उसी की लेगा ॥२८॥

साधन विरति विवेक आदियुत पथ पर हो यदि चलना ।
सुनो शोक तज शान्त चित्त से बैठ, हमारा कहना ॥
माननीय तुमको मम वाणी सहित युक्ति श्रुति अनुभव ।
फिर भी निर्णयार्थ स्वच्छन्दित पूर्णनाथ सम्मति तव ॥२९॥

है सुगूढ़तम यह रहस्य जीवन का सुलझाने को ।
बिनु प्रभु कृपा न सरल, समझने औ समझाने को ॥
आवश्यक मुझको दृष्टान्तों का आलम्बन लेना ।
तुमको पूरणनाथ सूक्ष्म मति, ध्यान धैर्ययुत देना ॥३०॥

भ्रम से जगत प्रतीत, ज्ञान से तीन काल में मिथ्या ।
किन्तु निरूपण क्रम भी, श्रुति में हित मुमुक्षु की शिक्षा ॥
श्रुति सिद्धान्त उभय, भ्रम समझे यदि उत्कट जिज्ञासा । श्रुति
पूर्णनाथ मिटती है, क्रम से मन्द मुमुक्षु पिपासा ॥३१॥

आत्मा से सम्भूत गगन फिर वायु तेज जल धरती ।
एकोऽहम् वहुस्याम् सृष्टि से पूर्व फुरण ईश्वर की ॥
ईश्वर के संकलप मात्र से जगत--दृश्य सज आया ।
पूर्णनाथ लो इसे समझ, फिर फुरना कोरी माया ॥३२॥

जादूनगरी स्वप्न वाटिका मनोराज्य की नारी ।
सूक्ष्म दृष्टि से देखो, ये सब फुरने की फुलवारी ।।
फुरने से जो रचा गया, निश्चय ही मिथ्या होता ।
पूर्णनाथ इसका अनुभव तो, बालक को भी होता ।।३३।।
यौगिक चमत्कार की रचना, जग सादृश्य दिखाती ।
निर्मल हृदय अशीष, सपुत्रा बन्ध्या तियहिं बनाती ।।
मंत्र शक्ति से सर्प दंश विष, है प्रत्यक्ष उतरता ।
पूर्णनाथ ऋषि शाप लगे, निश्चय नृप सुत है मरता ।।३४।। पि
नर की फुरन शक्ति से, ईश्वर सृष्टि नियम परिवर्तित ।
दृढ़ अनुमान, अतः ईश्वर फुरने से ही जग निर्मित ।।
अन्य न कारण, करे कृत्य नर, ईश्वर सृष्टि सरीखे ।
पूर्णनाथ सम सत्ता में ही, वस्तु प्रभावित दीखे ।।३५।।
योगी रचना अधिक अंश में, ईश सृष्टि से मिलती ।
शाप अशीश मंत्र की लीला, अल्प काल तक खिलती ।।
जादू सपना मनोराज्य, क्षण भर भी नहीं ठहरते ।
पूर्णनाथ इनकी दुनिया से, मति को बाहर करते ।।३६।।
प्रभु योगी संकल्प, सत्वगुण उभय कछुक अन्तर से ।
होता प्रगट रजोगुण शापाशीष और मन्तर से ।।
युक्त तमोगुण, जादू सपना मनोराज्य होते है ।
पूर्णनाथ इस क्रम से ही अन्तर इनमें होते है ।।३७।।

स्वप्न सिंहनी सपने में जब, नृप को खाने आती ।
अस्त्र-शस्त्र से सज्जित सेना, उसे बचा क्या पाती ।। नी
चित्र-पटल पर अग्निकाण्ड से, चित्र प्रकट जलता है ।
पूर्णनाथ पट में आती क्या, किंचित चंचलता है ।।३८।।

नृप की सेना शुद्ध फुरन से है ईश्वर के निर्मित ।
द्रष्टा मलिन फुरन निर्मित, व्याघ्री से नहीं प्रभावित ।।
वैसे प्रभु संकल्प देश का, नहीं कभी पट जलता ।
पूर्णनाथ नर फुरण चित्र में, अग्निकाण्ड जब चलता ।।३९।।

फुरने में अन्तर जब तक, व्यवहार भेद भासेगा ।
हुआ फुरन का साम्य क्रिया का भेद तुरत नासेगा ।।
श्रुति पुराण लोकों में प्रचलित ऐसी कोटि कथायें ।
पूर्णनाथ प्रभु जग होता, विकृत लग नर फुरणाये ।।४०।।

ऋषि सपत्नि मृग मृगी बने, करते विहार थे वन में ।
पाण्डु चले मृगया की इच्छा लेकर अपने मन में ।।
सर सन्धान किये नृप आहत उभय गिरे धरती पर । एकगिरा
पूर्णनाथ किंदम ऋषि नृप को, दिये शाप दुःख भर कर ।४१। दिया

ईश्वर फुरन शरीर छोड़कर, मृग तन ऋषि का धरना ।
ईश्वर फुरन बाण से ऋषि फुरना के मृग का मरना ।।
शुद्ध फुरन का शाप सत्यतः, नृप के ऊपर परना ।
पूर्णनाथ प्रत्यक्ष बताते, साम्य ईश नर फुरना ।।४२।।

दमयन्ती के मत की ज्वाला नर की फुरना ही थी ।
दुष्ट दृष्टि व्याधे को क्षण में, भस्म ढेर कर दी थी ।।
भक्तों के दृष्टान्त अलौकिक, लाखों हम पाते हैं ।
पूर्णनाथ सामर्थ्य मनुज, फुरना जो बतलाते हैं ।।४३।।

कलि की महिमा के प्रभाव से शुद्ध सतोगुण व्यञ्जक ।
नर फुरनाओं का अभाव है, अविश्वास की भञ्जक ।।
मलिन फुरन में भी मिलती है, ऐसी बहुत कलाये ।
पूर्णनाथ नर फुरन शक्ति जो, अब भी प्रगट लखाये ।।४४।।

जादू टोना जन्तर मन्तर के दृष्टान्त न कम हैं ।
किंचित अंशों में कम करते, फुरना विषयक भ्रम है ।।
अत: ईश नर फुरना, आपस में होती परिवर्तित ।
पूर्णनाथ सारांश ईश फुरने से ही जग निर्मित ।।४५।।

जल में थल, थल मे जल का. भ्रम मय दानव की माया ।
फुरन द्रौपदी से हरि प्रकटे, धरे वसन की काया ।।
बिना बीज फुरने के बल, उपजी धन्ना की खेती ।
पूर्णनाथ फुरने की लीला, प्रगट दिखाई देती ।।४६।।

ईश सृष्टि का सर्प पिटारे मे, विष था प्याले में ।
मीरा के फुरने ने बदला, अमृत में माले में ।।
प्रभु फुरना मृत वृषभ युगल, नरसी बल फुरन जिलाये ।
पूर्णनाथ फुरना बल से ही, प्रभु से भात भराये ।।४७।।

दशकन्धर आदेश मान, मारीच फुरन से अपने ।
धरा कनक मृग कपट वेष, चल दिया राम को छलने ।।
लखन फुरन निर्मित रेखा को, लाँघ सका नहिं रावन ।
पूर्णनाथ क्या कर न सके, यदि हो फुरना अति पावन ।।४८।।

व्यास फुरन ने पाण्डु, विदुर, धृतराष्ट्र पुत्र उपजाये ।
पृथक पृथक माताओं के, फुरनों का गुण जो पाये ।।
व्यास दृष्टि सामान्य रूप से, पुत्र रूप में आई ।
पूर्णनाथ पीतत्व भक्ति अन्धापन मातु बनाई ।।४९।।

कर्त्तृत्वाभिमान ज्योंही है अहं फुरन में ढलता ।
पुण्य पाप संयोग तहीं, परिणाम रूप में फलता ।।
उपादान संकल्प जीव का, औ निमित्त ईश्वर का ।
पूर्णनाथ फुरने से ही, उद्भव सम्भव है नर का ।।५०।।

ईश फुरन का प्रेत चला, नामदेव को त्रास दिखाने ।
रामरूप दर्शन करवाया, नामदेव की फुरना ने ।।
फुरने से जग रचा हुआ है, प्रभु की निश्चय मानो ।
पूर्णनाथ फुरनों का कौतुक, तुम तो खुद ही जानो ।।५१।।

करता है अपघात मूठ जो, मंत्र शक्ति का भेजा ।
डाइन लेती काढ़ फुरन से, शिशु नवजात कलेजा ।।
दृष्टिपात से नन्हे बच्चों के मुखड़े कुम्हलाते ।
पूर्णनाथ फटतीं दीवारें, सूख वृक्ष तक जाते ।।५२।।

द्रष्टा एक स्वप्न मे, फुरने से जग रच लेता है।
अद्भुत दृश्य फुरन से, जादूगर दिखला देता है।।
फुरना ही तो मनोराज्य में, अति आनन्द दिखाती।
सृष्टि प्रलय भी पूर्णनाथ, फुरने से आती जाती ।।५३।।

फुरन मात्र से अजा महिष, बहु रूप प्रेत है धरते।
होते प्रगट अदृश्य जलाते दीप स्वाँग बहु करते ।।
ईश सृष्टि सादृश्य हुए भी, तम फुरना के कारण। म
पूर्णनाथ वे एक रूप, क्षरण भर ही करते धारण। ५४।।

यज्ञ उपासन मंत्र आदि से, देव प्रगट होते है।
हो प्रसन्न प्रभु सृष्टि तुल्य, निज सृष्टि दिखा देते है ।।
शुद्ध फुरन शुचि योनि, अतः कृतियाँ प्रभु से मिलती है।
देव सृष्टियाँ पूर्णनाथ तक, दीर्घ काल चलती है ।।५५।। र्घ

दिव्य देह सुर धारण करते, भूल निकृष्ट तनों को।
करते जन कल्याण देव, सन्ताप पिशाच जनों को ।।
सुर लीलाये शुभ्र, मलिन लीलाये है प्रेतों की।
पूर्णनाथ विधियाँ भी, न्यारी प्रीति हेतु दोनों की ।।५६।।

योगी युक्त कृष्ण लीलाये, कोटि ख्यात है न्यारी।
औ कृतियाँ युञ्जान योगियों की भी विस्मयकारी ।।
है विश्वामित्रादि युक्त ऋषि इस प्रमाण में सारे।
पूर्णनाथ उजरी को सिरजे, बसती सृष्टि उजारे ।।५७।।

ईश देव योगी महिमा का पार कौन है पाते ।
जिसे प्रदर्शित करने में सब वेद शास्त्र थक जाते ।।
शुद्ध फुरन ये, इनकी फुरना का अनुमान लगाना ।
पूर्णनाथ घट सागर भरना, रवि को दीप दिखाना ।।५८।।

रास नृत्य में प्रति दो गोपी, मध्य प्रगट हो जाना ।
अज सन्देह हरण हित, रच गोवत्स ग्वाल दिखलाना ।।
भ्रम निवृत्त नारद का करने, प्रति प्रासाद प्रकटना ।
पूर्णनाथ यह सत्य, मृषा किमि फुरने से जग रचना ।५९।

भ्रमर मत्स्य दादुर मयूर की, देखो जन्म कहानी ।
रति सम्भोग वीर्य रज बिन उत्पति विचित्रता सानी ।।
फुरने से ही गर्भ क्रियायें सब सम्पादित होतीं ।
पूर्णनाथ जग है फुरनामय, इसे खोल रख देतीं ।।६०।।

रमणी जब रतिकाल राग में, मुग्धा हो जाती है ।
चित्त वृत्ति क्षण मिथुन जन्य, सुख में जब टिक जाती है ।।
नेत्र रश्मि से पति की आकृति, मन में जा बसती है ।
पूर्णनाथ प्रतिबिम्ब उसी का सुत को वह जनती है ।६१।

सात्विक शुद्ध फुरन यदि उसका, छाया पति की आती ।
मलिन फुरन नर अपर बिम्ब से, वह व्यवहित हो जाती ।।
होते हैं उत्पन्न वर्णसंकर, निज कुल के घालक । चातक
पूर्णनाथ पतिव्रता जनित सुत, धर्म नीति के पालक ।।६२।

है माता पतिव्रता, पिता है शास्त्र बचन अनुसारी।
अनासक्त गृह धर्म धुरंधर, शुद्ध कामना धारी॥
उऋण पितृऋण से होना ही, जिसका पावन व्रत है।
पूर्णनाथ बालक होता कुल मुकुट, नियम निश्चत है।६३।

शंकर के उपदेश अंजनी माता के कानों में।
पड़ते थे जब पवन निकल मुख बहा मधुर तानों में॥
ऋतु अनुकूल रही, ऊपर से पड़ी केसरी छाया।
पूर्णनाथ फुरने ने ही तो, कपि शरीर धरवाया॥६४॥

जग जननी सीता के मन में, पुत्र शोक नहिं आये।
अत शुद्ध फुरने से ऋषिवर, कुश से सुत उपजाये॥
यज्ञ अनल से मिली खीर में, था संयोग फुरन का।
पूर्णनाथ दी जन्म भरत रिपु, सूदन राम लखन का॥६५॥

रावण की दूषित फुरने ने, ऋषि मुनि रुधिर निकाला।
छिपा दिया अवनी तल में, फिर पड़ा उसी से पाला॥
कालराति बन काल स्वरूपा, प्रगटीं मातु जानकी।
पूर्णनाथ रज वीर्य बिना ही, नाशिनि जातुधानकी॥६६॥

ग्रहण चन्द्र रवि गर्भवती की, थोड़ी लापरवाही।
अंग भंग बालक को, कर देती है वह परछाही॥
ग्रह नक्षत्रों का प्रभाव, अक्षरशः सर्व विदित है।
पूर्णनाथ फुरना ही जग का, कारण यह निश्चित है॥६७॥

नारी गर्भ से अब भी हैं, पशु दैत्य जनमते कितने ।
पशुओं में भी इस प्रकार के, हैं उदाहरण इतने ।।
भिन्न योनि का गर्भ, योनि से भिन्न जन्म है लेता ।
पूर्णनाथ अतिरिक्त फुरन नहिं हेतु दिखाई देता ।।६८।।

राग मोह या भय से फुरने में, आकृति प्रतिबिम्बित ।
जिस योनि की भी प्रसूतिनी के मन में हो चित्रित ।।
वीर्य और रज का प्रभाव, तत्क्षण मारा जाता है ।
पूर्णनाथ फुरना आकृति अनुसार गर्भ आता है ।।६९।।

फुरने वश चौरासी का चक्कर, है जीव लगाता ।
देव पितर औ प्रेतों का, दृष्टान्त प्रगट बतलाता ।।
जग से हटकर जब फुरना, प्रभु चरणों में जाएगी ।
पूर्णनाथ तब हाथ जोड़कर, मुक्ति पास आएगी ।।७०।।

फुरना ही है रूप बदलती, फुरना चक्कर करती ।
फुरना ही नानात्व दिखाती, औ स्वच्छन्द विचरती ।।
फुरने से जीवत्व और ईशत्व भेद हो जाता ।
पूर्णनाथ चैतन्य जीव निस्संग सदा रह जाता ।।७१।।

फुरने के आडम्बर में, क्या जीव भला बंध जाए ।
भ्रम से बन्धन रूप भले हो, वह फुरने को पाये ।।
जो खुद ही निस्तत्त्व तत्त्व को कैसे विकृत करेगी ।
पूर्णनाथ चेतन सत्ता बिन, फुरना कहाँ रहेगी ।।७२।।

कर अभिमान फुरन का चेतन, भ्रम से संगी बनता ।
बस अपने बन्धन का कारण, जाल स्वयं ही तनता ।।
फुरने पर शासन कर्त्ता, फुरने से शासित होता ।
पूर्णनाथ भव चक्कर बस, आरम्भ यहीं से होता ।।७३।।

ठीक ठीक समझो तो, जग मिथ्या फुरना के नाते ।
क्रम में भी फुरना ही कारण हैं सब वेद बताते ।।
आदि सृष्टि पर्यन्त प्रलय, जग की यह सारी रचना ।
पूर्णनाथ करती है, कौतुककारी कोरी फुरना ।।७४।।

कैसा जग कैसा ईश्वर है, कैसा जीव कहाना ।
कैसी माया कैसा दु:ख-सुख, जग में आना जाना ।।
फिर भी सब सम्भव करने वाली फुरना पाता हूँ ।
पूर्णनाथ क्रम सृष्टि दिखा, फुरने को समझाता हूँ ।।७५।।

तीन गुणों की साम्यावस्था, प्रथम स्वरूप प्रकृति का ।
तत उपहित है ब्रह्म रूप, उससे विशिष्ट जगपति का ।।
निज आश्रय निज विषय अमोहक, शास्त्र निरूपित माया ।
पूर्णनाथ निस्पन्द अवस्था, सृष्टि आदि में पाया ।।७६।।

रहित ज्ञान इच्छा कृति से, सामान्य रूप अब तक थी ।
क्षोभ अभी था नहीं हुआ, वह शान्त रूप व्यापक थी ।।
हुआ जहीं उद्रेक फुरन में, वृत्ति विशेष प्रवाहित ।
पूर्णनाथ एकोऽहम् से, बहुस्याम रूप में परिणत ।।७७।।

फुरने के परिवर्तन से, वह भूमा व्यापक चेतन।
गुण अनुसार धरा अहमिति कर, अज हरि शंकर का तन ।।
प्रभु इच्छा ने सूक्ष्म जगत औ वेद सभी प्रकटाये।
पूर्णनाथ राजस फुरने में, ब्रह्मा होकर आये ।।७८।।

रच विराट को ब्रह्मा उसके पीछे खाने धाये।
यह प्रसंग विख्यात खोलकर, व्यास लेख बतलाये ।।
फुरन सृष्टि रच पीछे रचना मिथुन जगत दिखलाया।
पूर्णनाथ मनु सतरूपा से, जो विकास फिर पाया ।।७९।।

रचे विधाता पंचभूत, गुण त्रय से काया पंजर।
चला जीव पंचाग्नि मार्ग से, कर्म वासना लेकर ।।
मैं मम का अभिमान देह में, करके अपने भ्रम से।
पूर्णनाथ रच लिया जीव ने, सृष्टि दीख जो क्रम से।८०।

ब्रह्म अभिन्न स्वयम् सत्ता साक्षी ने संग किया जब।
अहमाकृति से नाम रूप, तन का अभिमान हुआ तब ।।
निकल पड़ा वह पथ अनादि पर, सुख हित विचरण करने।
पूर्णनाथ बस लगा भटकने, बद्ध हुआ इस फुरने ।।८१।।

विधि विरचित उद्यान जगत का हरा भरा लहराता।
है पदार्थ की रुचिर टहनियाँ, मारुत काम हिलाता ।।
शब्द रूप रस गन्ध परस, विषयों के सुमन खिले है।
पूर्णनाथ सुख नाना-गन्धों से, जो घुले मिले है ।।८२।।

पुष्पित वाणी के पत्ते, हंता ममता की क्यारी ।
भूमि अविद्या, मति सतत्व जड़, कर्म बीज, गुण वारी ।।
अहमाभिमानी मधुमक्खी, रस मधु का, संचय करती ।
पूर्णनाथ चित्त छत्ते में, ला लाकर उसको भरती ।।८३।।

विषय विमूढ जीव योंही, निश दिन है चक्र लगाता ।
पा अवसरवश काल भोल तव छता हर ले जाता ।।
कर्म नियंत्रित अवधि लिये, फिरता है जग कानन में ।
पूर्णनाथ फुरना प्रति फुरना से बँधकर बन्धन में ।।८४।।

बाल्यकाल से अद्यावधि, जीवन के सुख-दु:ख सारे ।
स्वप्न सरिस मिट गये मिलेंगे जो तू तनिक विचारे ।।
चाह वासना राग पकड़ से, दूर तुम्हारी पड़ते ।
पूर्णनाथ इस हेतु आज वे, तुम को मिथ्या लगते ।।८५।।

वर्तमान की सभी परिस्थितियाँ भी झूठी ही हैं ।
मिथ्या होकर भी बाँधे हैं, अतः अनूठी ही हैं ।।
यह तेरा अज्ञान झटक सुख मति का धागा तोड़ो ।
पूर्णनाथ तुम मुक्त सर्वदा, विषयों से मुख मोड़ो ।।८६।।

नाना पात्रों के चरित्र का, अभिनय में अभिनेता ।
मानों तत अनुरूप हुआ, सब कार्य अदा कर देता ।।
बनता है नर नारि कभी मरता फिर जी जाता है ।
पूर्णनाथ अन्तर उसके व्यक्तित्व में न आता है ।।८७।।

वायुयान पर्दे पर, उड़ता प्रगट दिखाई देता ।
दिल्ली से कलकत्ता के अड्डे पर पहुँचा देता ।।
चित्र दृष्टि से घटनाओं में, लगतीं पलक निमेखे ।
पूर्णनाथ सब अचल पड़ा, यदि पटल दृष्टि से देखे ।।८८।।

जीव स्वप्नगत क्षण के अन्दर, कहाँ कहाँ फिर आता ।
संस्कारों से अगणित, पिछली दुनियाँ विविध बनाता ।।
सपने में भी सपना रचता, अद्भुत कैसा कैसा ।
पूर्णनाथ जाग्रत से देखे, वह जैसे का तैसा ।।८९।।

फुरने का आवर्त्त सदा ही, चलता है निज गति में ।
नित असंग भी जीव बद्ध, इव फुरने की अनुरति में ।।
ज्ञान रूप वह मुक्त रूप, आनन्द रूप वह हरदम ।
पूर्णनाथ जब उदय भानु, टिक सकता कैसे निशितम ।९०।

जादूगर की चिड़िया सचमुच दीखे चहुँ दिशि उड़ती ।
कब जन्मी किससे किस थल पर, क्या है बुद्धि पकड़ती ।।
नरकृत खग का हरिकृत दाना, प्रगट दीखता चुगना । चु
पूर्णनाथ समसत्ता कारण, दाना हरि की फुरना ।।९१।।

ईश्वर कृत नर जादूगर कृत आम दीखता खाता ।
ईश्वर सृष्टि रसाल सरिस ही, गन्ध स्वाद भी पाता ।।
ये दोनों दृष्टान्त बताते, मिथ्या करके क्रम को ।
पूर्णनाथ भोक्तृत्व और भोक्तव्य दृष्टि से भ्रम को ।।९२।।

कृषि बीजादिक के क्रम का है प्रगट दीखता दाना ।
खग का तो फुरने ही से, देखा तुमने बन जाना ।।
वैसे वीर्य रजादि क्रमो का, नर भी तुम ने पाया ।
पूर्णनाथ नर फुरन रचित, उस फल को जिसने खाया ९३।

यदि शंका हो समसत्ता में, वस्तु प्रभावित होतो ।
तो क्यों क्रम भ्रम मिलन कारिणी, यह घटना सब होती ।।
सच पूछो तो इसका कारण, तुमको ज्ञात नही है ।
पूर्णनाथ यह क्रम भी सारा, तत्वतया भ्रम ही है ।।९४।।

यदि शंका हो दोनों फुरना, तो क्यों है कालान्तर ।
ईश जगत ही रह जाता है बन्द जहाँ वह मन्तर ।।
युक्त नहीं तो भी शंका यह, मलिन मंत्र की फुरना ।
पूर्णनाथ पाती अभेद, यदि होती योगी फुरना ।।९५।।

जीर्ण देह तज दिव्य देह को, कर महर्षि ने धारण ।
नृप बालाओं को व्याहा, निज फुरना के ही कारण ।।
धरे पचासों तन महलों में सुख भोगे चिरकालिक ।
पूर्णनाथ निज शुद्ध फुरन मिस, ईश्वर जग के मालिक ।९६।

फुरने में प्रतिबिम्बित केवल हुई हरिन की छाया ।
अपर जनम में मिली भरत को, हिरने की ही काया ।।
दिये नहुष को शाप भरत जड़, सर्प योनि जनमाये ।
पूर्णनाथ यह फुरना, चाहे जैसा जिसे बनाए ।।९७।।

ईश्वर के अवतार सभी, होते हैं फुरने से ही।
है जिनका अभिप्राय, पूर्ण फुरनाएँ करने से ही ।।
गज प्रह्लादिक की एकांगी फुरना से हरि आए।
पूर्णनाथ सम्पादित उनकी कृति कर शीघ्र सिधाये ।।९८।।

बहु असुरादिक की लेकर के, सभी पापमय फुरना।
पुण्य फुरण सुर-आदिक की, ले राम कृष्ण तन धरना ।।
दीर्घकाल तक रहा किए वे, पूर्ण कर्म जग सारे।
पूर्णनाथ सुर की रक्षा कर, असुरों को संहारे ।।९९।।

त्यों करके धारण फुरनाओं को सम्पूर्ण जगत की।
नाम रूप मय सृष्टि काल में, प्रभु ने जगत प्रगट की ।।
विष्णु रूप हो पालन करते, ईश्वर कहलाते हैं।
पूर्णनाथ जग फुरन सहित, फिर ब्रह्म समा जाते है ।।१००।

कार्य फुरण का कारण मति, कारण फुरने की माया।
गुण वैषम्य क्रमानुसार, न्यूनाधिक अन्तर आया ।।
तदपि उभय के सृष्टि कार्य में साम्य बहुत ही रहते।
पूर्णनाथ योगी जादूगर, प्रभु इव रचना करते ।।१०१।।

सजातीयता मति माया की, साम्य सतोगुण कृत है।
मलीनत्व शुद्धत्व दृष्टि से, कुछ अन्तर उद्धृत है ।।
फिर भी वैदिक विधि से, फुरना सतगुण की होने से।
पूर्णनाथ योगी फुरना, बढ़कर जादू टोने से ।।१०२।।

रजगुण शापाशीष मन्त्र की, फुरनायें होती है।
क्रमश इन पुरुषों की मतियाँ भी अशुद्ध होती हैं ॥
अतः यही कारण है, कृतियाँ ऐसी फुरनाओं की।
पूर्णनाथ चिरकाल न रहतीं, हो जातीं त्यों ज्यों की १०३।

तमोगुणी जादू प्रेतादिक की होती है फुरना।
है विलीन सा हो जाता, उस मति का निर्मल रहना ॥
क्षणभंगुर उनकी रचना, होती झट ही मिट जाती।
पूर्णनाथ जो अब भी लोको में, बहु पाई जाती ॥१०४॥

शंका हो यदि स्वप्न भ्रमादिक भी मति की फुरनाएँ।
तो पदार्थ की समता में, इतने अन्तर क्यों आएँ ॥
नींद दोष से, स्वप्न अविद्या से, भ्रम भी दूषित है।
पूर्णनाथ योगी की फुरना, दोष रहित पूजित है ॥१०५॥

प्रेत पितर सुर यक्ष दनुज, जब तन प्रवेश नर करते।
तुरत प्रभावित फुरना होती, नर भयादि में परते ॥
वे भी नर के वश हो जाते, तन्त्र मन्त्र के द्वारा।
पूर्णनाथ प्रभु फुरने से तब, रचा हुआ जग सारा ॥१०६॥

योंही योगी नर शरीर में, जब प्रवेश कर पाता।
नर फुरने का ज्ञान और अधिकार उसे हो जाता ॥
प्रभु फुरना सम्बन्ध, वही योगी है जब कर लेता।
पूर्णनाथ हरि सृष्टि भेद का, ज्ञान तुरत कर लेता ॥१०७।

शंका हो क्यों नहीं प्रभावित, तब राजा की सेना ।
जब सपने चल रहा, सिंहिनी से नृपासु हर लेना ।।
मति रचना को स्वप्न अविद्या की सत्ता ढक लेती ।
पूर्णनाथ अन्योन्य प्रभावों से वंचित कर देती ।।१०८।।

यदि योगी का शुद्ध फुरन द्रष्टा प्रवेश कर जाए ।
स्वप्न फुरन से मिल, स्वप्ने की व्याघ्री मार गिराए ।।
स्वप्नावस्था तक चल जाने की, उसमें है क्षमता ।
पूर्णनाथ वह जो चाहे, कर दे जो भी हो सत्ता ।।१०९।।

शक्ति न साधारण मति में, जो हर सत्ता तक जाए ।
स्वप्न सिंहिनी जाग्रत नर जिमि साधा बाधा जाए ।।
ठूँठ भ्रान्ति के प्रेत आदि की भी, बस यही दशा है ।
पूर्णनाथ यों निष्प्रभाव रहता दोनों नकशा है ।।११०।।

जो सन्देह करो ज्वर कम्पन रोदन होते कैसे ।
ये विकार होते वैसे, वह ज्ञान प्रगटता जैसे ।।
ज्ञान सत्यपन पर पदार्थ के, कभी न निर्भर करता ।
पूर्णनाथ वह नहीं वस्तु से, ज्ञानभ्रान्ति से डरता ।।१११।।

फुरने का संक्षिप्त रीति से, यह स्वरूप है सारा ।
अहमाकृति इदमाकृति में, जिसकी बहती दो धारा ।।
कार्य वर्ग में बिखर रही, नित इसी रूप से फुरना ।
पूर्णनाथ सम्भावित करती, प्रभु से जीव बिछुरना ।।११२।।

चेतन जो आबद्ध अहम् आकृति में जीव कहाता ।
वही दृष्टि जब अपनी, इदमाकार बहिः फैलाता ॥
इदमाबद्ध वही चेतन, विषयों का सुख बनकर के ।
पूर्णनाथ है प्राप्य जगत में, जीव भोग्य हो करके ॥११३॥

सभी कार्य वर्गो की अहमाकृति केन्द्रीभूता हो ।
कारण फुरना कहलाती है, जो स्वतन्त्र रूपा हो ॥
प्रभु संज्ञा देती विशिष्ट चिद् पर आरोपण करती ।
पूर्णनाथ ज्ञानादि जागरण में, विधि संज्ञा धरती ॥११४॥

सांख्य शास्त्र में महत्तत्व है, यही दशा कहलाती ।
पुनः यही वेदान्त शास्त्र में, ब्रह्मा संज्ञा पाती ॥
कारण ईश्वर ही फिर, ईश्वर कार्य कहा जाता है ।
पूर्णनाथ इसका अभिमानी, ब्रह्मा कहलाता है ॥११५॥

इसकी पूर्वावस्था भी वह, अहं फुरन ही जानो ।
तत अभिमानी व्यष्टि देह में, इसी जीव को मानो ॥
अहमभिमानी जीव देवता, शिव कहलाते कैसे ।
पूर्णनाथ यह उस विधि होता, तन समष्टि में जैसे ॥११६॥

तन समष्टि में महत्तत्व की पूर्वावस्था पाते ।
एकोऽहं सामान्य फुरण, अभिमानी ईश्वर आते ॥
वही विष्णु या शिव कहलाते, जदपि नाम का अन्तर ।
पूर्णनाथ श्रुति सम्मत, यह सिद्धान्त एक है हरि हर ११७॥

इसी कारणावस्था को वेदान्ती कहते माया ।
सांख्य प्रकृति, भक्त भगवती, योगियों की योग माया ॥
सभी अवस्थाये नीचे से ऊपर बिछी हुई है ।
पूर्णनाथ फुरना विशेष महिमा में खिली हुई है ॥११८॥
फुरना यही कार्य कारण भावों में परिणत होकर ।
व्यवहारों में आरोपित करती है जीव व ईश्वर ॥
निराकार निगुन असंग नित्य, मुक्त शुद्ध चेतन को ।
पूर्णनाथ कर द्वैत दिखाती ब्रह्म द्वैत भंजन को ॥११९॥
फुरना ईश्वर को जीवों इव नहीं प्रभावित करती ।
अपितु सर्वज्ञ सर्ववित्त व्यापकता दे, उससे डरती ॥
ले उपाधि उस फुरने की कारणपन औ निर्मलता ।
पूर्णनाथ प्रभु निर्मल कारण औ जग प्रेरक बनता ॥१२०॥
कार्य फुरण आबद्ध-पना परतन्त्रपना को ढोता ।
आरोपित अल्पज्ञ जीव, परतन्त्र धर्म को होता ॥
स्वप्न पुरुष आबद्ध स्वप्न जग मे जैसे हो जाता ।
पूर्णनाथ सँग कार्य फुरन प्रभु अंश जीव बँध जाता ॥१२१॥
जीव जगत दोनों ईश्वर फुरने से होते विरचित ।
समसत्ताहित स्वप्न पुरुष इव जीव जगत में आवृत ॥
कर फुरना सँग निज स्वरूप चैतन्य तत्त्व को भूले ।
पूर्णनाथ कल्पित निज आकृति अहभाव में फूले ॥१२२॥

फुरण धर्म चाञ्चल्य आदि को धर्म मानकर अपना ।
तन स्थूल कर्मानुसार से जारी नाता करना ।।
मै पन करता थूल देह में, थूल जगत में बाहर ।
पूर्णनाथ दारा सुत वित्त में फँस जाता है जाकर ।।१२३।।

यद्यपि है वह जीव मुसाफिर तन में रहने वाला ।
बनता है तनको भ्रम से निज रूप समझने वाला ।।
तन में हन्ता जग में ममता माया का आच्छादन ।
पूर्णनाथ है भ्रान्ति यही जो ग्रंथि करे जड़ चेतन ।।१२४।।

दूर हटा गुरु शास्त्र ईश निज के प्रसाद से माया ।
सत स्वरूप निज ब्रह्म आतम एकत्व भाव को पाया ।।
जिसी जीव ने जिसकी अहमाकृति समूल से बिसरे ।
पूर्णनाथ वह मुक्त हुआ स्वच्छन्द जगत में विचरे । १२५।।

फुरन प्रसारित कर जब तक पीछे उसके धाएगा ।
फुरन रचित जग का तब तक वह पार नहीं पाएगा ।।
वही फुरन निज प्रति समेट कर विषय ब्रह्म कर लेगा ।
पूर्णनाथ ब्रह्मस्थित जीवन्मुक्त कहा जाएगा ।।१२६।।

यथा सप्तवर्षीय बालिका पति गृह में भी रहती ।
तब भी अपना लक्ष्य सदा वह पीवर को ही करती ।।
षोडश वर्षावस्था में जब तरुणा का मद छाता ।
पूर्णनाथ पति लक्ष्य निरन्तर पीवर से बन जाता ।।१२७।।

या कहिये जब काम वृत्ति उस में हो जाती जागृत ।
उसे नहीं करना पड़ता है पति चिन्तन में शिक्षित ॥
उसी वृत्ति का इस बाला में है अभाव यह जब तक ।
पूर्णनाथ पति लक्ष्य बना सकती न कोटि विधि तब तक १२८

यों ही विषयासक्ति हृदय में रहती जब तक नर के ।
विषय त्याग सकती न फुरन यह भीतर के बाहर के ॥
फैली जब तक फुरना जग मे रहित बुद्धिमत्ता से ।
पूर्णनाथ जग है प्रतीत तब तक फुरना सत्ता से ॥१२९॥

हुई वृत्ति वैराग्य प्रगट प्रभु के प्रसाद से ज्योंही ।
पति ज्यों प्रभु में उमड़ उठेगी धार प्रेम की त्योंही ॥
विरह भक्ति के गान वियोगावस्था में गायेगा ।
पूर्णनाथ सॉवरिये को जब तक न पास पाएगा ॥१३०॥

सतत करेगा पंचकोश का उद्यम पूर्ण विवेचन ।
योग मार्ग से सतत करेगा या चक्रों का भेदन ॥
प्रभु की खोज करेगा तज कर जग की सारी आसा ।
पूर्णनाथ है यही अवस्था कहलाती जिज्ञासा ।१३१।

यही अवस्था हुई तीव्रतर मिलन स्वरूप धरेगी ।
शुद्धोऽहं बुद्धोऽहं की ध्वनि नित मुख से निकरेगी ॥
गुंजित वातावरण रहेगा मिलन गीत से हर दम ।
पूर्णनाथ युग भर में होते ऐसे पुरुष बहुत कम ॥१३२॥

होती है व्यभिचारकारिणी पतिव्रत नारी सी ही ।
गृह कुल की मर्यादा से वह रहती डरती सी ही ।।
किन्तु नहीं व्यभिचार कर्म वह त्याग कभी भी सकती ।
पूर्णनाथ उद्देश्य पूर्ति हित हर पखण्ड को रचती ।।१३३।।

पति सँग भी व्यभिचार लक्ष्य कर पतिव्रत पाठ दिखाती ।
ऐसी दशा बद्ध ज्ञानी की जग में देखी जाती ।।
जग न काल-त्रय कह,वृति हरि तज,जग को विषय बनाती ।
पूर्णनाथ पहचान न इसकी, है सबको हो पाती ।।१३४।।

काल चक्राकार गति से सत्य तुमको लग रहा है ।
सत्य इसको मानकर इसका भरोसा कर रहा है ।।
काल के यदि भेद का सम्भव तुझे हो ज्ञान पाना ।
नाथ पूरण जान लोगे है नहीं इसका ठिकाना ।।१३५।।

विष्णु के शुभ नाभि निर्गत नालनीरज को विचारो ।
पद्म पुष्पासीन चतुरानन निरख मति को सम्हारो ।।
बस यही रूपक बताएगा तुझे यह भेद सारा ।
नाथ पूरण पूर्णतः मिट जायगा संशय तुम्हारा ।।१३६।।

एक ही परिपूर्ण हूँ मै दूसरा कोई नहीं है ।
विष्णु की सामान्य वह आकृति दिखाई दे रही है ।।
एक ही मैं धर प्रजाइव रूप लूँ स्वयमेव नाना ।
नाथ पूरण वृत्ति ही वह नाल चित्रित जान जाना ।।१३७।

है घनावस्था उसी ही वृत्ति की, विधि रूप लेकर ।
चार मुख चव वेद अज हैं ज्ञान इच्छा कर्म बनकर ॥
अब चलो सिद्धान्त पथ की सैर कुछ तुझको कराऊँ ।
नाथ पूरण काल गति संक्षेप से तुझको सुनाऊँ ॥१३८॥

सृष्टि के आरम्भ में सामान्य फुरना जागती है ।
बस फुरन ही विष्णु का आकार दे फिर भागती है ॥
किन्तु वह परिपक्व हो घन रूप हो जाती जहीं है ।
नाथ पूरण ठोस निश्चय रूप होती बस तहीं है ॥१३९॥

ज्ञान इच्छा कर्म का विस्तार बस होता वहाँ से ।
और सूक्ष्म स्थूल जगत प्रसार भी होता वहाँ से ॥
विष्णु अभिमानी कहाते फुरन की प्रथमा कला के ।
नाथ पूरण इस तरह विधि है द्वितीया भी कला के ।१४०।

विष्णु की उस वृत्ति का जब मात्र एक विलास होता ।
बस उसी में आयु का, विधि के सहज ही नास होता ॥
आयु ब्रह्मा की अगर सम्पूर्ण जो तुम जान पाओ ।
नाथ पूरण एक भी क्या श्वास तुम जग में लगाओ ।१४१।

लाख तैंतालीस बीस सहस्र सम्वत बीत जाते ।
इस अवधि को चार युग कह शास्त्र है सारे बताते ॥
चार युग की चौकड़ी के सहस चक्कर पूर्ण होते ।
नाथ पूरण बार दो, तब रात दिन विधि के पूर्ण होते ॥१४२॥

इस तरह शत वर्ष विधि की आयु होती और जिसमें ।
इन्द्र यम मनुसृष्टि चौदह बार विधि के एक दिन में ।।
यों ठिकाना अन्य जीवों की अवस्था का नहीं है ।
नाथ पूरण बुद्धि तव, जिसका भरोसा कर रही है । १४३।।

एक ही क्षण में तुम्हारे पूर्ण कीट पतंग जीवन ।
दृष्टि में उसकी वही है आयु जाती दीर्घ सी बन ।।
देख तुमने अब लिया, इस काल विषयक दृष्टियों को ।
नाथपूरण कालगत उन विविध अद्भुत सृष्टियों को ।१४४।

बुद्धि तब आबद्ध होती, मिनट में, बस सत्य वह ही ।
बाँध घंटे में उठी, बस सत्य है घंटा सहज ही ।।
भाँति इस दिन मास वर्ष युगादि सारे सत्य तुमको ।
नाथपूरण तत्वतः तुम जानते ही हो न जिनको ।।१४५।।

मिनट क्रम से कल्प तक के काल अन्तर्भूत जिसमें ।
काल अनुसन्धान तब हो जाय केन्द्रीभूत जिसमें ।।
सत्य है वह एक ही नित, काल का भी काल होकर ।
नाथपूरण लीन जिसमें काल, सब अस्तित्व खोकर ।।१४६।।

काल में सन्मुख तुम्हारे दीखती जो सत्यता है ।
सत्यता के साथ होती प्राप्त काल महानता है ।।
काल भासित हो रहा है जो तुम्हें सुख शान्ति करके ।
नाथपूरण जान लो सब है, तुम्हारी भ्रान्ति करके ।।१४७।।

साक्षीरूपी सत्य और महान आत्म स्वरूप तेरा।
केन्द्र है सुख शान्ति का आनन्दमय है रूप तेरा ।।
बस तुम्हारा पड़ रहा प्रतिबिम्ब तेरी कल्पना में।
नाथपूरण है तुम्हारी काल विषयक भावना में ।।१४८।।

भूत जाते भूल, भावी में पहुँच ही तुम न पाते।
वर्त्य में ही नित्य की कर मान्यता, हो बद्ध जाते ।।
दृष्टि दो यदि भूत पर,वह काल अति मिथ्या लगेगा।
नाथ पूरण है असत, कर काल तू अनुमान लेगा ।।१४९।।

अलपता तुम देखते हो, काल में कीटादिकों के।
इन्द्र है यह अलपता नित देखता, जीवादिकों के ।।
इन्द्र के भी काल में, विधि अलप्ता ही देखते है।
नाथ पूरण अलपता यह विष्णु विधि में देखते हैं ।।१५०।।

काल सत कीटादि का, या है तुम्हारा काल सच्चा।
इन्द्र यम मनु काल सत, या है विधाता काल सच्चा ।।
वृत्ति या सत विष्णु की, जो एक ही चक्कर लगाती।
नाथ पूरण बस उसी में सृष्टि सारी बीत जाती ।।१५१।।

यह तुम्हारी काल विषयक भ्रान्ति जाएगी न तब तक।
तुम महा उस काल में निज वृत्ति बाँधोगे न जब तक ।।
तू समझता काल तू क्रमशः सदैव बिता रहा है।
नाथ पूरण किन्तु तुझको काल ही नित खा रहा है।१५२।

नित्य बहा करती हैं जग में फुरने की धारायें।
जीवों को सम्भ्रान्तिकारिणी करती जो लीलायें ।।
जिस धारा से बढ़ो, प्राप्त कर चरम उसी की सीमा।
पूर्णनाथ प्रभु पा, प्रयास हो स्वतः जायगा धीमा ।।१५३।।

ये माया की फुरनायें हैं इनका पार नहीं है।
पर मायापति के आगे, इनका व्यापार नहीं है ।।
जिस क्षण तुमको शुभ इच्छा हो मायापति पाने की।
पूर्णनाथ चिन्ता बीती, माया से घबराने की ।।१५४।।

रूपवान जड़ से बढ़कर वरु है कुरूप भी चेतन।
अन्य चेतनों की तुलना में मानव रूप निकेतन ।।
मानव के क्रम से सुन्दरतम कामदेव आते हैं।
पूर्णनाथ सौन्दर्य कृष्ण शतकाम समा जाते हैं ।।१५५।।

खग मृग गानों से प्रियतर हैं गायक नर की तानें।
परियों की तानों पर, सुर उर गति लगती थहराने ।।
पर सरस्वती स्वर की देवी, वीणा झंकृति छेड़े।
पूर्णनाथ मनमुग्ध लगे आनन्द तरंग थपेड़े ।।१५६।।

क्रीड़ा व्यर्थ मनोरंजन में कालक्षेप मूर्ख करते।
काल यही उनका होगा पर फिर भी तनिक नहीं डरते ।।
यह उनका व्यापार रात दिन हर्ष सहित चलता रहता।
पूर्णनाथ जीवन उनका पानी की तरह बहा करता ।।१५७।

उनसे कितने श्रेष्ठ वही नर जो करते अपना उद्यम ।
पालन-पोषण में कुटुम्ब के व्यस्त हुए रहते हरदम ।।
वे लेते अपने जीवन में क्षणभर भी विश्राम नहीं ।
पूर्णनाथ संग्रह करते वे चाहे रहते जहाँ कहीं ।।१५८।।

यह भी है व्यापार अधम ही शेष यहाँ पर ही होता ।
अधम योनि में जन्म-मरण के बीज सदा रहता बोता ।।
इसका क्षेत्र यहीं तक सीमित लखकर सुख स्वर्गिक उत्तम ।
पूर्णनाथ पालन वेदाज्ञा करते ऐसे मानव कम ।।१५९।।

इसमें भी पुनरावर्तन के भय को जिनने देख लिये ।
भाव जगत में भक्ति आदि के साधन जो आरम्भ किये ।।
ऐसे बिरले पुरुष जगत में वन्दनीय सबके द्वारा ।
पूर्णनाथ संसार सिन्धु का समझ रहस्य लिये सारा ।१६०।

सालोक्यादि मुक्ति पाकर वे रसास्वाद प्रभु का पाते ।
किसी भाव में किन्तु इष्ट से भिन्न पड़े ही रह जाते ।।
इससे भी श्रेयस्कर वह व्यापार जहाँ निज की बलि कर ।
पूर्णनाथ तद्रूप हुए कैवल्य प्राप्त करते हैं वे नर ।।१६१।।

इस प्रकार व्यापार मार्ग से ऊपर उठते जाओगे ।
उत्तर उत्तर श्रेष्ठता औ सच्चाइ ही पाते जाओगे ।।
नीचे के व्यापार लगेंगे मिथ्या और निकृष्ट सभी ।
पूर्णनाथ कर प्राप्त ब्रह्म को होगे तुम सुख रूप तभी ।१६२

महा प्रलय पश्चात जगत उत्पत्ति काल जब आता ।
एकोऽहं बहुस्याम आदि फुरने में जग खिल जाता ।।
आदि फुरण में ही खिल जाती है क्रम की भी लीला ।
पूर्णनाथ क्रम भी भ्रम जैसे भ्रममय जगत रंगीला ।।१६३।

महाभूत प्रत्यक्ष दिखाई पाँचों ही है देते ।
मिथ्या किन्तु विवेक बुद्धि से काम तनिक ही लेते ।
नाम रूप को विषयकारिणी बुद्धि सत्य पाती है
पूर्णनाथ नहिं अस्ति भाति प्रिय तक जब तक जाती है १६४

जल को पृथ्वी का कारण,जल का कारण प्रगट अनल है ।
कारण वायु अनल का है पर वायु व्योम का फल है ।
धीर बुद्धि हो उन्हें विचारो, तत्त्व दृष्टि से रुक के ।
पूर्णनाथ अस्तित्व विवेचित होंगे सींग शशक के ।।१६५।।

प्रथम कार्य कारणता से यदि उन्हें सत्य ही मानें ।
तब भी वे मिथ्या ही होंगे अन्तमूल पहिचाने ।।
परम्परा से उनकी क्रमशः बिन्दु वही आयेगा ।
पूर्णनाथ मिथ्यापन कारण सहित लखा जाएगा ।।१६६।।

हो विकल्प यदि किस प्रकार हैं जल पृथ्वी का कारण ।
बहु दृष्टान्त करेंगे शंका को इस, शीघ्र निवारण ।।
स्वाती का जल एक सीप में पड़कर बनता मोती ।
पूर्णनाथ कदली मे पड़ संज्ञा कपूर की होती ।।१६७।।

वही वंसलोचन होता है बाँस मुकुल में जाकर ।
विष वर्द्धन अहि में होता है स्वाती का जल पाकर ॥
गर्भ बीज स्वाती जल ही चातक पक्षी में बोता ।
पूर्णनाथ सब जगह वही जल ठोस रूप में होता ॥१६८॥
बर्फ रूप धारण करता है जल घनिष्ठ कुछ होकर ।
वह भी नीलम हो जाता है, बर्फ रूप को खोकर ॥
रूप वनस्पतियों का धरता, पड़कर सँग बीजों के ।
पूर्णनाथ ऐसे मिलते दृष्टान्त बहुत चीजों के ॥१६९॥
फेन नमक सिप्पी काई, सब है रूपान्तर जलके ।
जल ही गलकर हो जाते है सभी अन्त में चलके ॥
पृथ्वी पर्वत वृक्ष अतः जल के ही कार्य सभी है ।
पूर्णनाथ वे ठोस भ्रान्ति से, जल स्वरूप अब भी है ॥१७०।
तन में ताप बढ़े चलता है तन से छूट पसीना ।
पावस में वर्षा होती जब तपता ग्रीष्म महीना ॥
सिद्ध हुआ अतएव अग्नि से पानी पैदा होता ।
पूर्णनाथ अब भी वह दाहक अग्नि वारि बन धोता ।१७१।
वायु, तेज का कारण, इसमें भी दृष्टान्त कई हैं ।
प्राणायाम. या सैर से होती है जठराग्नि नई है ॥
वायु रहित हो, जलता दीपक भी तुरन्त बुझ जाता ।
पूर्णनाथ निशि चक्रवात है, सहसा ज्योति जलाता ॥१७२॥

तनिक वायु कृत घर्षरण से दावाग्नि लगे जंगल में ।
वायु विडोलित वड़वानल जलता समुद्र के जल में ।।
अग्नि व सूर्य का तेज अभी इस भाँति व्यक्त हर छन है ।
पूर्णनाथ यह भ्रम है, अब भी तेज स्वरूप पवन है ।।१७३।।

जल के घट भीतर प्रवेश से, जल का भक भक करना ।
मिट्टी के ढेले से, जल में बुद बुद का फूट निकलना ।।
यही सिद्ध कर देता है तब हवा प्रवाहित होती ।
पूर्णनाथ जब शून्य गगन में, थोड़ो हलचल होती ।।१७४।।

यदि तुमको सशय, घट व ढेले में जल हलचल करता ।
आदि सृष्टि नभ में जलादि का नाम नहीं जब रहता ।।
नभ विशिष्ट में, जीव की वासना कर्म करे आन्दोलन ।
पूर्णनाथ प्रभु इच्छा या तब होता मारुत डोलन ।।१७५।।

शब्द वियत का गुरण,जिसकी गति तीव्र वायु से भी है ।।
ज्ञात रेडियो से, बस मारुत का कारण नभ ही है ।
जहाँ जहाँ है पवन, गगन भी वहाँ वहाँ मिलता है ।।
पूर्णनाथ नभ ही है सच जो अभी वायु चलता है ।।१७६।।

शून्य गगन का अर्थ, शून्य का अर्थ नहीं है कुछ भी ।
किसी वस्तु का ज्ञान न जब, अज्ञान शेष है तब भी ।।
कारण है अज्ञान गगन का, निश्चित नियम हुआ अब ।
पूर्णनाथ अज्ञान अभी भी, जो अम्बर दीखे तब ।।१७७।।

यह अज्ञान नहीं टिक सकता है बिना सत् सहारे।
ज्ञान इसे प्रत्यक्ष जगत में बाधित करके टारे॥
था यदि सब अज्ञान, कहाँ से प्रगट चेतना आई।
पूर्णनाथ जो रज्जु सर्प इव, सब को ही भटकाई ॥१७८॥

नहीं जानता मैं, स्वरूप अज्ञान इसी को कहते।
नहीं जानने को जो जाने, उसको साक्षी कहते॥
वही सिद्ध बस नहीं जानने को भी करता नित है।
पूर्णनाथ वह ब्रह्म रूप से शास्त्रों में वर्णित है ॥१७९॥

यही ज्ञान के आश्रित, है अज्ञान टिका कहलाता।
जिस प्रकार सामान्य ज्योति में अन्धकार है छाता॥
है प्रकाश यदि नहीं वहाँ, तो अन्धकार भी कैसा।
पूर्णनाथ है पूर्णतया अज्ञान इसी ही जैसा ॥१८०॥

होता तम अभिव्यक्त ज्योति से है जिस भाँति निवारित।
जब प्रकाश होता विशेष है चारों ओर प्रसारित॥
उसी भाँति अभिव्यक्त ज्ञान भी है अज्ञान मिटाता।
पूर्णनाथ मिटने पर जिसका नाम नहीं रह जाता ॥१८१॥

या स्वरूप विस्मृति को, है अज्ञान विज्ञ बतलाते।
जिस निमित्त दृष्टान्त लोक में भी प्रचलित हम पाते॥
गणित प्रश्न में तनिक भूल से प्रश्न गलत वह सारा।
पूर्णनाथ है बेचैनी की फूट निकलती धारा ॥१८२॥

यदि न भूल कुछ वस्तु, गलत वह प्रश्न कहाँ से करती ।
होती जो कुछ वस्तु, बुद्धि की जागृति में भी मिलती ॥
किन्तु यथारथ ज्ञान प्रश्न का ज्योंही हो जाता है ।
पूर्णनाथ जनु लोप भूल का, त्योंही हो जाता है ॥१८३॥

नहीं अस्तिमुख की प्रतीति का विषय इसे कह सकते ।
पुनः नास्ति मुख से भी कहने में हम ही है छकते ॥
यही भूल जो है, स्वरूप अज्ञान जगत का कारण ।
पूर्णनाथ है अनिर्वाच्य, विधि से होती अवधारण ॥१८४॥

शंका हो अप्राप्य अनिर्वचनीय वस्तु जग भीतर ।
ज्ञात अहं फुरना माया का तुझे नमूना बनकर ॥
यह अज्ञान यही माया है यही उपाधि कहाती ।
पूर्णनाथ जो अनिर्वाच्य बन तेरे सन्मुख आती ॥१८५॥

तुम्हीं कहो वह सत या मिथ्या कैसा तुझको लगता ।
देश काल क्या अहं फुरन का कौन मातु पितु बनता ॥
है कैसा परिणाम फुरण का रंग रूप औ काया । म०/
पूर्णनाथ कब कहाँ जन्म मरणादिक कौन बताया ॥१८६ ।

रहिता जन्म प्रगट व्यवहारा अस्ति प्रतीता माया ।
निस्तत्त्वा होकर भी रचकर जग जिसने दिखलाया ॥
मृग मरीचिका स्वप्न सिनेमा जादू की कठपुतली ।
पूर्णनाथ कुण्ठित कर वाणी इसने सबको छल ली ॥१८७॥

स्वप्न जागरण में तो तेरा अहं फुरन रहता है।
सुप्तावस्था में अभाव को स्वीकृत तूँ करता है॥
किन्तु वहाँ भी उसका साक्षी विद्यमान पाते हो।
पूर्णनाथ अनुभव करने से वंचित रह जाते हो॥१८८॥

पर समाधि में निर्विकल्प, जो अहं फुरन से ऊपर।
अनुभव साक्षात्कार तुम्हें भी हो सकता है चलकर॥
रहती है प्रिय जहाँ अहं से रहित स्वयं की सत्ता।
पूर्णनाथ यह कहलाती विद्वत्ता की विद्वत्ता॥१८९॥

यही स्वयं की सत्ता ही है साक्षी भी कहलाती।
बुद्धि शिरोमणि इन्द्रिय भी कर इसका ज्ञान न पाती॥
"विज्ञातारं केन विजानीयात्" जिसे श्रुति कहती।
पूर्णनाथ साक्षी के साक्षी तक गति किमि हो सकती।१९०।

सुख विषयों में नहीं किन्तु वह तव स्वरूप की छाया।
उनमें सुख की भ्रान्ति कराने वाली है यह माया॥
सुख की श्रेष्ठता उत्तरोत्तर जो दीखे, यह भ्रम है।
पूर्णनाथ श्रुति आश्रय अद्भुत दिखलाने में क्रम है॥१९१॥

तैत्तिरीय श्रुति क्रमश सतगुण सुख का वर्णन करती।
नृपसे ब्रह्मा तक सुख का क्रम बद्ध निरूपण करती॥
इस क्रम में भी भ्रम ही वर्णित ज्ञात अगर हो पाए।
पूर्णनाथ वह धन्य बुद्धि जो शास्त्र मर्म तक जाए॥१९२॥

शास्त्र मर्म गुरु बिना नहीं सबके द्वारा खुल पाता।
शब्द अर्थ के बीच मर्म कुछ और छिपा रह जाता॥
श्रुति उपदेश नियत से किस,उस थल पर सुना रही है।
पूर्णनाथ होता न ज्ञात वह, क्या पथ दिखा रही है॥१६३॥

है विवाह की आज्ञा में श्रुति का न अर्थ रत होना।
काम वृत्ति के दमन हेतु तिय काम भोग गृह कोना॥
खुले क्षेत्र में कर न सके जो रण विरक्त हो करके।
पूर्णनाथ जीते उस रिपु को तिय का आश्रय करके॥१६४॥

नाना भावों की श्रुतियाँ, नाना थल देखी जातीं।
क्रोध हर्ष आशोष प्रेम उत्साह धैर्य दिखलाती॥
सबके आशय में विरक्ति को भरी मंत्रणा रहतीं।
पूर्णनाथ टेढ़े या सीधे सभी त्याग हित कहतीं॥१६५॥

शास्त्रों का यह कथन साधकों का हित करने वाला।
वर्तमान सुख विषय जन्य का त्याग कराने वाला॥
ऊपर के सुख में विशेष सुख बुद्धि पुनः हो जाए।
पूर्णनाथ इस हेतु नहीं श्रुति इस क्रम को बतलाए॥१६६॥

ब्रह्मा को ब्रह्मानी जैसी सुरपति को इन्द्रानी।
नर को वैसी ही नारी है तथा श्वान को श्वानी॥
पर विभूतियों में इनके, अन्तर देता दिखलाई।
पूर्णनाथ इसके कारण सुख में, न भिन्नता आई॥१६७

विषय योग के काल क्रिया में वृत्ति ठहरने वाली।
उसी वृत्ति में तव स्वरूप की छाया पड़ने वाली॥
दिखलाती है सुख प्रवाह विषयों में उमड़ रहा है।
पूर्णनाथ माया का कौतुक दीखे यही महा है॥१९८॥

छाया में है साम्य अतः सुख साम्य हुआ सब ही का।
है प्रभाव पड़ता वहाँ पर बाहर की वस्तु जिसी का॥
किंचित न्यूनाधिक्य सुखों में तुम्हें दृष्टि आता है।
पूर्णनाथ यह ग्रहण क्रिया का भेद कहा जाता है॥१९९॥

पाप पुण्य योनित्व आदि का वह प्रभाव तुम पाते।
दर्पण का दृष्टान्त दिखा हम अभी तुम्हें समझाते॥
रहित अगर मालिन्य और चाञ्चल्य-दोष से दर्पन।
पूर्णनाथ प्रतिबिम्ब न दीखे मलिन, न होती कम्पन।२००।

उस सुख का ही अनुभव करता है पर-नारी-गामी।
पर चिन्तित रहता है भय से होने के बदनामी॥
अधम योनियाँ शूकर कूकर पराधीनता कारण।
पूर्णनाथ प्रतिबिम्ब शान्ति से करे न सुख का धारण।२०१

शंका हो अब कार्यों का कारण से पैदा होना।
कार्य रूप में रहने पर भी सच कारण ही होना॥
दोनों बाते सत्य भले पर इसको माने कैसे।
पूर्णनाथ कारण में मिलते कार्यमृत्ति घट जैसे॥२०२॥

कठिन धातुएँ लोहा पत्थर तक गलकर द्रव बनते ।
जल विलीन पावक में होता, गर्म तवे पर पडते ।।
दीप्त अग्नि की ऊष्मा को भी सोख पवन है लेता ।
पूर्णनाथ कारण में मिलना कार्य सिद्ध कर देता ।।२०३।।

दशगुण है आकाश पवन से, पवन उसी में मिलता ।
परुष मधुर शब्दों से परसित मन, झुँझलाता खिलता ।।
वही परस धारण कर लेता, रूप शब्द का फिर से ।
पूर्णनाथ बस सिद्ध गगन से, पवन मिले औ निकसे ।।२०४।।

शब्द निकलता मन से, उसका अर्थ समाता मन में ।
गिरा अर्थ है भिन्न कहाते, किन्तु अभिन्न असल में ।।
मन संकल्प विकल्प रूप, निकले मति के संशय में ।
पूर्णनाथ होता विलीन भी मति के ही निश्चय में ।।२०५।।

निश्चय बुद्धि-स्वरूप तथा मै पन में पैदा होता ।
पुनः उसी सामान्य मै पने से ही, होता खोता ।।
मै पन को ही माया कहते शक्ति यही कहलाती ।
पूर्णनाथ यह शक्ति, शक्तिमत से न भिन्न रह पाती ।।२०६।।

साक्षी है वह परम ब्रह्म ही मै पन को पाकर ।
यही शास्त्र की अन्तिम श्रेणी चरम लक्ष्य जीवत होकर ।।
सा काष्ठा सा परा गतिः नानास्ति नेह किंचन भी ।
पूर्णनाथ खल्विदं ब्रह्म सर्वम् न भिन्न है अणु भी ।।२०७।।

जलमें संख्यातीत तरंगे निशि दिन उठती रहती ।
सागर से हो भिन्न दीखतीं, नाम रूप भी धरतीं ।।
उनकी सत्ता भिन्न नहीं है, जल से तनिक विचारे ।
पूर्णनाथ आधार ब्रह्म में भूत वर्ग तिमि सारे ।।२०८।।

कारण, सूक्ष्म, स्थूल जगत औ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ती ।
तीन अवस्था की व्यवहृतियाँ सुख दुखादि की भुक्ती ।।
इन समस्त व्यवहारों को जग सच्चा करके जाने ।
पूर्णनाथ इन सब का विवर्त्त सत्य नहीं पहचाने ।।२०९।।

चली निरीक्षण करने जग का चश्मा लाल लगाकर ।
जगत लालिमामय देखोगे जहाँ कहीं भी जाकर ।।
चश्मा हरा, हरा जग दीखे, पीत रहे जग पीला ।
पूर्णनाथ जग श्वेत श्वेत से औ नीले से नीला ।।२१०।।

महाभूत मिथ्या भी मायापति कृत, सत्य हुए हैं ।
अन्त करण विशिष्ट पुरुष से भी, छल वही किये हैं ।।
गो गोचर मन जाय जहाँ तक, माया ही माया है ।
पूर्णनाथ साम्राज्य भूत जग बहिरन्तर छाया है ।।२११।।

श्रोत्रेन्द्रिय आकाश, वायु ने त्वचा, तेज ने आँखे ।
जल रसना, पृथ्वी ने नासा, द्रष्टा को दे राखे ।।
कारण ज्ञान की पाँच इन्द्रियाँ भूत सतोगुणकृत है ।
पूर्णनाथ कर्मेन्द्रिय रजगुण महाभूतनिर्मित है ।।२१२।।

नभ प्रदत्त वाणी, कर मारुत से, पग तेज बनाया ।
है उपस्थ जल से, गुद पृथ्वी से, यद्यपि सब माया ।।
निज निज तमस अंश से भी प्रत्येक भूत ने बाहर ।
पूर्णनाथ रख दिया पूर्व ही पाँचों विषय लगाकर ।।२१३।।

शब्द गगन कृत परस वायु कृत, रूप तेज के द्वारा ।
जल से रस, औ गन्ध धरा से, इस प्रकार जग सारा ।।
करण विषय द्रष्टा उपाधि-पना त्रिपुटी को भूत बनाये ।
पूर्णनाथ भूतों से बाहर पहुँच जीव किमि पाये ।।२१४।।

मात्र आँख पर चस्मा रंजित, रंजित दृश्य लखाता ।
चस्मा लाली से न दृश्य सचमुच रंजित हो जाता ।।
असत भूत का जब तक द्रष्टा सत इव व्यवहार करेगा ।
पूर्णनाथ सत ही वह बनाकर तत्वावरण करेगा ।।२१५।।

निर्गत अन्तःकरण वृत्ति जब विषय देश तक जाती ।
भौतिक द्वार पार कर फिर तक भूत विषय, रुक जाती ।।
नाम रूप भ्रमजाल पड़ा, वह तत्व नहीं लख पाता ।
पूर्णनाथ, सच अस्ति भाति प्रिय से वंचित रह जाता ।।२१६

ऐसे ही कर्मेन्द्रिय की कृति भी भूतों के अन्दर ।
होती है आबद्ध, उने भी भूत वर्ग है दुस्तर ।।
यह भूतों का चस्मा जब तक सादर साथ रहेगा ।
पूर्णनाथ यह जीव अविद्या धारा नित्य बहेगा ।।२१७।।

भूतों के सामान्य सतोगुण से, मन होता विरचित।
प्राण रजोगुण से होते हैं, जिससे सब ही परिचित॥
मन संकल्प विकल्प वृत्ति है, सुख-दुःख अनुभव कर्त्ता।
पूर्णनाथ प्राण स्पन्दन है, शक्ति संचरण कर्त्ता॥२१८॥

इनके ज्ञान और कृति की भी ऊपर कथित कहानी।
भ्रम ही इनसे भी पाता है अहं वृत्ति अभिमानी॥
ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय कृत भ्रम होता है जब जाग्रत।
पूर्णनाथ मन प्राण करे भ्रम जाग्रत औ स्वप्नागत।२१९॥

जाग्रत में विषयों का सुख दुःख प्राण और मन के बल।
पाता है द्रष्टा, जब मन की वृत्ति ठहर जाती चल॥
होता है प्रतिबिम्बित, चेतन का अद्भुत सुख उसमें।
पूर्णनाथ भौतिक पदार्थ का सुख, समझे वह मन मे॥२२०।

देहस्थूल तमोगुण से भूतों के, बिरचा जावे।
उदय पाप प्रारब्ध हुए, उसमें विकार जब आवे।
दुःख यह नाम और दुःख की अभिव्यक्ति इन्हीं दोनों तक।
पूर्णनाथ मन से द्रष्टा रुक जाता है मानो थक॥२२१॥

पुण्य कर्म से जब विकार का, है अभाव इस तन में। *भाव*
सुख के नाम रूप की छाया तब पड़ती है मन में॥
स्वप्ने में भी इसी भाँति पा, नाम रूप में रुक जाता।
पूर्णनाथ उसके आगे आनन्द नहीं लख पाता॥२२२॥

इष्ट वस्तु कर प्राप्त, वृत्ति आकार उसी का धरती।
आत्मा की छाया उसमें प्रतिभासित सुख बन पड़ती ।।
वही वृत्ति पाकर अनिष्ट जब पाप रूप से फलती।
पूर्णनाथ दुःख रूप दिखाई आत्मा छाया देती ।।२२३।।
है इच्छा का विषय पुत्र उसकी माता के मन में।
प्रमुदित प्रतिक्षण वह रहती अपने सुत के जीवन में ।।
वही पुत्र जब मृतक, हुआ इच्छा का विषय नहीं है।
पूर्णनाथ वह दुःख विधुरा माता हो जाय तहीं है ।।२२४।।
भ्राता को कुछ न्यून राग था, उससे कम चाचा को।
मरने पर क्रमश दुःख होगा, चाचा को भ्राता को ।।
कुल पड़ोस के सम्बन्धी, उसके जो कहलाते है।
पूर्णनाथ क्रमश न्यूनाधिक सारे दुःख पाते है ।।२२५।।
वही पुत्र निज द्रोही की, इच्छा का विषय नहीं था।
जीवन में दुःख देता, उसको चाहे जहाँ कहीं था।
मरने पर वह द्वेष, राग में परिणत होता ज्योंही।
पूर्णनाथ वह वैरी है, हर्षित हो जाता त्योंही ।।२२६।।
सचमुच सुख-दुःख का कारण, है नहीं पुत्र की काया।
नही सदा सम रहने वाली, आत्मा की वह छाया ।।
राग द्वेष ही अपितु मुख्य कारण,है इन सुख-दुःख के।
पूर्णनाथ गत सुख-दुःख है, गतरागद्वेष पुरुष के ।।२२७।।

जितना सुख अनुकूल दशा में, राग किसी को देता ।
उसी अंश में द्वेष, दु:ख प्रतिकूल दशा में देता ॥
सुख-दु:ख के कारण का सारा भेद, समझ जो लेगा ।
पूर्णनाथ इन रागद्वेष को कहाँ ठहरने देगा ॥२२८॥

जग अज्ञान कहा जाता है भौतिक जग के बाहर ।
इससे ही जग प्रगटित होते सूक्ष्म थूल है आकर ॥
जदपि यहाँ चस्मा भूतों का, नहीं एक भी रहता ।
पूर्णनाथ अज्ञान तभी भी, जीव आवरण करता ॥२२९॥

इस कारण तन में चस्मा, अज्ञान वृत्ति का शोभित ।
सुख को करता विषय जीव यह, किन्तु यहाँ भी मोहित ॥
अपने आश्रय विषय जीव को, मुग्ध अविद्या करती ।
पूर्णनाथ सुख सागर तक, जाने से वंचित करती ॥२३०॥

यद्यपि सुख यह भी निर्विषयक जिसे भोगता है वह ।
निरावरण अपरोक्ष देखने से, वह है जाता रह ॥
यह चस्मा अज्ञान मात्र है, इस अभाव का कारण ।
पूर्णनाथ सुख सत्य मिले, जब चस्मा होय निवारण ।२३१।

स्वप्न जागरण दोनों में है होता भूतों से भ्रम ।
सुप्तावस्था में भ्रम करता, जीव अविद्या का तम ॥
इन तीनों में सुखाभास, है सच्चे सुख को बाधा ॥
पूर्णनाथ कृतकृत्य वही, जो सुख के सुख को साधा ।२३२॥

शंका होवे यदि समाधि सविकल्प सभी से न्यारी ।
नहीं भूत भय यहाँ, नहीं अज्ञान जन्य अँधियारी ।।
शुद्ध सतोगुण वृत्ति ज्ञान की अनुभव करने वाली ।
पूर्णनाथ सुख स्वच्छ ज्ञेय का यह तो सत्य निराली ।।२३३।।

सच है यह सद्वृत्ति निकल कर बनती सुख अनुयोगी ।
किन्तु प्रमाता बनता है, सुख ज्ञेय विषय का भोगी ।।
यह सुख है प्रतिबिम्ब, बिम्ब इसका जो सुख कहलाता ।
पूर्णनाथ यह जीव, नहीं उसका अनुभव कर पाता ।।२३४।।

वही बिम्ब साक्षी "स्वरूप" है, जीव उसी को पाकर ।
सुख को, निज को, विषय ब्रह्म को, एक समझता आकर ।।
रहित विपर्यय शंशय से दृढ़ दशा यही होती जब ।
पूर्णनाथ अनुभूति यही अपरोक्ष प्राप्त होती तब ।।२३५।।

बाह्य पदार्थो का सुख, जाग्रत में प्रतीत जो होता ।
वह प्रतिबिम्ब निजी स्वरूप का, यथा काँच में होता ।।
मुख अभिन्न प्रतिबिम्ब सभी समझे, जो देखें दर्पन ।
पूर्णनाथ निर्वीज दशा तिमि नहीं भेद का दर्शन ।।२३६।।

जाग्रत में पदार्थ के सुख दु ख, मनो विषय जो सुख-दु.ख ।
स्वप्ने के सुख-दु ख, सुषुप्ति अज्ञान वृत्ति सुख ही सुख ।।
औ समाधि सविकल्प प्राप्त प्रतिबिम्बित सुख, वह करता ।
पूर्णनाथ सबको स्वरूप से निजी अभिन्न समझता ।।२३७।।

सारे सुख आभास उसी के, वही सभी का भोगी ।
इस विरोध को समझ लिया,फिर सुख हित क्यों गति होगी
निजानन्द में मग्न समझता भिन्न न, सत रज तम सुख ।
पूर्णनाथ हो कोटि कॉच, मुख बिम्ब, एक ही है मुख ।२३८।
उसी फुरण का पुनः विष्णु के, जानो अति दुर्भेद्य रहस्य ।
जिसे पकड़ कर सभी जीव है, जकड़ गये हो माया वस्य ॥
एक एक फुरने में उनके, लगे हुए कोटिक ब्रह्माण्ड ।
पूर्णनाथ तन्वी लतिका में, लगते जैसे बहु कुष्माण्ड ॥२३९॥
प्रति ब्रह्माण्ड नियामक ब्रह्मा, पृथक् पृथक् है लगे हुए ।
प्रति ब्रह्मा के नीचे, अगणित देव फुरण हैं जगे हुए ॥
देव जीव विधि के कार्य फुरन है, जिसकी पुनः कार्य फुरना ।
पूर्णनाथ सपने में परिणत, रचती फिर असंख्य सपना ।२४०
कार्य फुरण का सपना ज्योंही, जीव रचित ब्रह्माण्ड बना ।
वही विश्व फिर बन तैजस, उस सपने के संसार सना ॥
अपने आविर्भाव काल में, रचा रचाया पा करके ।
पूर्णनाथ जाना वह सपना, जग इम जान मिथ्या करके ।२४१।
कार्य फुरण कृत सपना, जग द्रष्टा भो कार्य फुरणकृत है ।
समसत्ता वश सत्य मानकर, फुरण प्रवाह निमज्जित है ॥
निजी चक्षु से स्वप्न जगत को, मिथ्या करके लेना जान ।
पूर्णनाथ है उसे असम्भव, जब तक हो न विश्वगत ज्ञान ॥

पुनः विश्व में, वह तैजस जब अपना फुरण विलय करता ।
प्राप्त किया एकत्व उसी से, अब न स्वप्नभय से डरता ।।
त्यों यह जीव न विष्णु फुरण में जब तक कर निज फुरण विलीन ।
पूर्णनाथ पा लेता आँखेन विष्णु फुरण की तब तक दीन २४३
कारण फुरना निज स्वभाव वश, करती रहती आवर्त्तन ।
निज स्वरूप का करती रहती, चक्र रूप से परिवर्तन ।।
फुरने से फुरनान्तर होती, लेकर जादू मय संसार ।
पूर्णनाथ चेतन उसमें आबद्ध न पाता उसका पार ।।२४४।।
फुरण धर्म अनुसारी होना, यही जीव का है क्लीवत्व ।
यही मूर्खता करती उसका, अनुदिन परिवर्द्धित क्लिष्टत्व ।।
कार्य फुरन कोई, न जीव को कभी दिखा निज रूप छले ।
पूर्णनाथ यह तब सम्भव, जब कारण फुरना आँख मिले २४५
कार्य फुरण की आँख, स्वतः कारण फुरने सी हो जाये ।
दृष्टि दोष के कल्मष को यदि, जाग्रत द्रष्टा धो जाये ।।
जो समेट निस्सेष फुरन, हरि फुरना माहि मिला सकता ।
पूर्णनाथ वह व्यक्ति इसी जग में, हरि दर्शन पा सकता २४६
किसी पुरुष को देख रही, मातृत्व दृष्टि से जब माता ।
विषय ब्रह्म पर दृष्टि हेतु, सुत का आरोपण हो जाता ।।
माता उर से द्रवित सुधा, वातसल्य भाव लगता बहने ।
पूर्णनाथ सत सुख आजाता, सुत सुख का जामा पहने ।२४७।

पुरुष वही जब बन जाता है, निज नारी का दृष्टि विषय ।
ब्रह्मपने पर आरोपण से, हो जाता पति का निश्चय ।।
कहते नटते रिझते खिझते मिलते खिलते लजियाते ।
पूर्णनाथ वे भरे भवन में, करते नैनन से ही बाते ।।२४८।।

भगिनी निज दृष्टयानुसार, उस नर को भ्राता मान रही ।
भ्राता उपहित परम ब्रह्म को, किन्तु नहीं पहचान रही ।।
माता[1] नारि[2] बहिन[3] तीनों, उस प्रभु सुख से वंचित रहते ।
पूर्णनाथ इसको ही माया, आगम निगम सभी कहते ।।२४९

वही ब्रह्म कर विविध दृष्टि सँग, विस्मृत कर निज रूप दिया
होकर दृढ़ आबद्ध दृष्टि में तदवत ही व्यवहार किया ।।
मातृ[1] पत्नि[2] अनुजाआदि[3], बना उस दृष्टि दोष का ही प्रेरा ।
पूर्णनाथ अब नाम रूप का, पार न कर सकता घेरा ।२५०

आत्मा रूपी दृष्टा की ज्यों, पुरुष ब्रह्म रूपी बाहर ।
लेता है सुत[1], पति[2], भाई[3] का, रूप भ्रान्ति से धारण कर ।।
दृष्टि दोष के कारण से ही, दोनों दृश्य और द्रष्टा ।
पूर्णनाथ करते हों मानों, सार्थक निज सज्ञा सृष्टा ।।२५१।।

ज्योंही निर्मल दृष्टि हुई बस, त्योंही शान्त हुई त्रिपुटी ।
त्रिपुटी की विध्वंस कारिणी, व्यापक ब्रह्म ज्योति प्रकटी ।।
अमृत बिन्दु लगे बरसाने, फिर स्वरूप निष्ठा के कन्द ।
पूर्णनाथ सागर ही सागर, रहा अन्त में ब्रह्मानन्द ।।२५२।।

दृष्टि युधिष्ठिर की जगती में, बुरा न कोई नर पाई ।
दुर्योधन की दृष्टि, भला पाई न जगत भर फिर आई ।।
जैसी जिसकी दृष्टि, सृष्टि भी वैसी ही उसकी रहती ।
पूर्णनाथ अतिगूढ़ विषय यह, श्रुति प्रयत्न करके कहती २५३

विषय विवश उद्भ्रान्त बहिर्मुख, दृष्टि दोष निज नहीं लखें
स्वगत दोषगुण बाह्य विषय में, करके मिथ्या आरोप रखें ।।
अन्तर सुख अभिव्यक्ति दृष्टि ने, बाह्य वस्तु में दिखलाया ।
पूर्णनाथ जीवत्व यही है, यही कहाती है माया ।।२५४।।

अरे मूर्ख यदि किंचित भी सुख, बाह्य वस्तुओं में होता ।
सकल सुलभ सुख सामग्री संचय कर्त्ता नृप, क्यों रोता ।।
प्राप्तिकाल सुख प्रद प्रतीति से, यदि पदार्थ हो सुखदाई ।
पूर्णनाथ उस क्षण से उसमें, क्रमिक न्यूनता क्यों आई २५५

तव व्यापार सुदूर देश में, पत्र वहाँ से यदि आया ।
लाभ अप्रत्याशित का, मंगल समाचार तुमने पाया ।।
कहाँ लाभ, वह द्रव्य कहाँ, सुख कैसे, फिर आया मन में ।
पूर्णनाथ भ्रम सुख पदार्थ है, तब सुख छाया है उसमें २५६

सुरुचि भोज्य के प्रथम ग्रास में, सुख तरंग जो लहराये ।
कहो तुम्हीं वह प्रथम सरिस ही, पीछे भी क्या रह जाये ।।
तुम्हें अद्य पर्यन्त मिला, आ बाल्य काल जो सुख सारा ।
पूर्णनाथ तुम नहीं तनिक क्यों, आज सुखी उसके द्वारा २५७

नाड़ी संघर्षण से नारी भग में, सुख अनुभव करता ।
रुधिर मूत्र मल का जिसमें से, झरना सतत बहा करता ।।
घर्षण में सुख नहीं, वृत्ति तब टिकती है उसके आश्रय ।
पूर्णनाथ प्रतिबिम्बित छाया देती, उसमें सुख निश्चय २५८

दद्रु खाज आरम्भ करो, उस सुख में मन होता विह्वल ।
जहाँ क्रिया वह बन्द जले त्वक्, दुःख से मन है तुरत विकल
तदपि ज्ञान यदि नहीं हुआ, सुख गति का जिस पामर नर को
पूर्णनाथ कसले कटि अपनी, वह चौरासी चक्कर को २५९

अशुचि वस्तु में करवा देती है, शुचि बुद्धि यही माया ।
घृणित वस्तु का केन्द्र, नहीं तो क्यों कर प्रिय लगती काया
दुःख में भी सुख बुद्धि कराके, सब जीवों को यही ठगे ।
पूर्णनाथ विषयों में क्या सुख, जो इतने रमणीय लगे २६०

यह अनित्य क्षणभंगुर में, है नित्य बुद्धि करवा देती ।
जग अनित्यता प्रगट, अन्यथा कैसे सर्वहिं फँसा लेती ।।
आत्म बुद्धि इस भौतिक तन में, कर देती जो निरे अनात्म ।
पूर्णनाथ मैं कर्त्ता भोक्ता, इसमें माया का प्रगट महात्म २६१

अद्वितीय नित्त मुक्त रूप यह, आत्म तत्त्व है व्याप्त हुआ ।
असद्रूप जड़ जग प्रपंच जो, सन्मुख दृष्टि समाप्त हुआ ।।
अचल अटल घन रूप व्याप्त कूटस्थ, नहीं आ जा सकता ।
पूर्णनाथ तन भौतिक फिर यह, चक्कर कहाँ लगा सकता२६२

कर्म भोग, फिर कर्म भोग का, कैसे नित चलता चक्कर ।
स्वर्ग नर्क किसको होते, फिर कौन जन्मकर जाता मर ॥
ऐसी शंका करे मूढ़ जन, सत्य जिन्हें लग जगत रहा ।
पूर्णनाथ फिर कहाँ समझने दे, उनका अज्ञान महा ।२६३।

विद्युत जो सत्ता देती, वह होती नित्य असंग यथा ।
है वह ज्योति स्वरूप, ज्योति को प्रगट नहीं करे तथा ॥
निर्मित काँच धातु का लट्टू चूर चूर जो हो जाता ।
पूर्णनाथ उसमें क्या गुण जो, प्रगट प्रकाश करा पाता २६४

यह खटके की महिमा जो, लट्टू बिजली संयोग करे ।
जितने नम्बर का लट्टू, बस उस नम्बर की ज्योति करे ॥
बिजली, खटका, लट्टू तीनों, यदा एक में मिल जाएँ ।
पूर्णनाथ प्राकट्य ज्योति को, कार्य रूप में दिखलाये ।२६५।

तनस्थूल में सर्व सूक्ष्म जो, बुद्धि भूतकृत कहलाती ।
यथा कर्म यह हर घट में न्यारी न्यारी क्षमता पाती ॥
यह भूतों का कार्यभूत जड़, यह भी जड़ है इस कारण ।
पूर्णनाथ यह ज्ञान कर्म को, कभी न कर सकती धारण २६६

साक्षी विद्युत सदृश, अहं फुरना होती खटका की सी ।
आकृति होती तथा बुद्धि की, लट्टू की आकृति जैसी ॥
जब साक्षी का अहं फुरन का, हुआ परस्पर प्रथम मिलन ।
पूर्णनाथ है प्राज्ञ वही, अभिव्यक्त फुरन विशिष्ट चेतन २६७

साक्षि फुरन, विद्युत खटके इव, मिलते जब लट्टू मति से ।
अप्रगट प्रगट ज्योति बनते है, तैजस विश्व उभय क्रम से ।।
साक्षी[1], फुरना[2], बुद्धि[3] मिलन से, होता प्रगट विशेष प्रकाश ।
पूर्णनाथ है प्राज्ञ काल तक विद्यमान तम, पाता नाश ।२६८।

साक्षी से उठकर वह मै पन, आकृति में मति के ढलता ।
मैं तन हूं अभिमान यहाँ से, होकर आगे को चलता ।।
मै कर्त्ता हूं भोक्ता हूं इस विधि, चलने लगते व्यापार ।
पूर्णनाथ तादात्म्य यही है, मति साक्षी का एकाकार ।२६९।

लट्टू की क्षमता से होता वह प्रकाश, ज्यों नानाकार ।
त्योहीं चींटी से ब्रह्मा तक, दीखे ज्ञान अनेक प्रकार ।।
है जिसका यह ज्ञान एक, वह साक्षी है सबका सामान्य ।
पूर्णनाथ तन सबके मिथ्या, यह भी होता सबको मान्य ।२७०।

यह अभिव्यक्त प्रकाश जीव है, कहते आगम निगम पुरान ।
गमनागमन इसी का होता, इसको ही अज्ञान व ज्ञान ।
घटे पूर्णदृष्टान्त नहीं यह, ऐसा अद्वितीय सिद्धान्त ।
पूर्णनाथ जन्मान्तर हित अब अन्य बताता हूं दृष्टान्त ।२७१।

विद्युत है जब वही सिनेमा गृह के बीच पहुच जाती ।
सहित प्रकाश खेल की रचना,अस्ति भाती प्रिय दिखलाती ।।
नाम रूप की उस प्रतीति में, बन जाता क्षण भर संसार ।
पूर्णनाथ उसमें रत होकर, देते जन गृह कार्य विसार ।२७२।

कारण विद्युत साक्षी है, फिर विशेष रूप फुरना विद्युत ।
उसके आगे चक्कर करती, मनकी रील चित्र से युक्त ।।
यही रीलगत चित्र वासना, मनगत हुई इम कहे जाते ।
पूर्णनाथ जिनके संकल्पों से, जग दृश्य रचे जाते ।।२७३।।

चित्रों से मिल चित्र, दिखाती विद्युत, जैसे पर्दे पर ।
साक्षि ज्योति मन से हो, लाती जगत ब्रह्म में त्यों बाहर ।।
चित्रों से उपहित बिजली हैं, होते चित्र नहीं कुछ भी ।
पूर्णनाथ जग में बाहिर के वैसे दृश्य नहीं कुछ भी ।२७४।

चालक रील घुमाता जैसे, रील घूमती है वैसे ।
जीव दारुयोषित बन नाचे, कारण प्रभु चाहे जैसे ।।
किमपि नहीं वश में चित्रों के, ध्वनि रिकार्ड से निकल रही ।
पूर्णनाथ भ्रम होता, चित्रों में से ही ध्वनि निकल रही ।२७५।

कार्य किया करते है तत्तत देव अक्ष के अभिमानी ।
देह कार्य करता है, ऐसे भ्रम करते है अज्ञानि ।।
इन्द्रिय द्वार झरोखे नाना, सब पर देव विराज रहे ।
पूर्णनाथ बाहर भीतर के, वे ही कर सब काज रहे ।२७६।

विद्युत में है नहीं, चित्र में सब विकार आना जाना ।
षडविकार जीवों में कल्पित हैं, तिमि ही कृतियाँ नाना ।।
वस्त्र जीर्ण जैसे तज कर नर, नये नये धारण करता ।
पूर्णनाथ तज जीव जीर्ण तन, तैसे नव शरीर धरता ।२७७

जब तक है ये चित्र वासना, चित्त रील में लगे हुए ।
जब तक साक्षी का प्रकाश है, चित्रों का सँग किये हुए ।।
अपने शुद्ध प्रकाश रूप को, जीव विस्मृत कर देता ।
पूर्णनाथ वह समझे, मानों चित्र रूप में धर लेता ।।२७८।।

विगत वासना चित्र हुई मन रील जहाँ महान निर्मल ।
होगी वह फिर स्वच्छ शुद्ध, अपने कारण स्वरूप से चल ।।
वह होगा चैतन्य रूप, भ्रम अंधकार सब नासेगा ।
पूर्णनाथ सामान्य ज्योति में, निजानन्द ही भासेगा ।।२७९।

है जन्म न इसका होता, यह मरण कदापि न पाता ।
हो करके फिरसे होना, सम्भव यह भी न दिखाता ।।
अज नित्य इसे कहते हैं, शाश्वत पुराण कहते है ।
पूरण तन बध्य हुए भी, इसको अबध्य कहते है ।।२८०।।

इसको न शस्त्र बींध सकते, पावक न जला सकता है ।
जल इसे न गीला करता, मारुत न सुखा सकता है ।।
कटने जलने से ऊपर, गलने सुखने से बाहर ।
पूरण नित व्यापक घन है, यह अचल सनातन होकर २८१

अव्यक्त अचिन्त्य स्वरूपी, यह कहलाता अविकारी ।
कल्पित आरोपित ही, हैं इसमें व्यवहृतियाँ सारी ।।
है सूक्ष्म इन्द्रियाँ तन से मन सूक्ष्म इन्द्रियों से भी ।
पूरण मन से बढ़ मति है, यह है ऊपर मति से भी ।।२८२।

सम्पूर्ण जगत का उद्भव, या प्रलय समस्त जगत का।
कुछ भी न परे है इससे, यह अधिष्ठान है सबका ॥
धागे में मणियाँ जैसे है, रहती हुई पिरोई।
पूरण सब लोक इसी में है गुँथे, न बाहर कोई ॥२८३॥

जल में रस यही कहाता है, तेज यही शशि रवि का।
वेदों में प्रणव गगन में है शब्द, व पौरुष नर का ॥
है पावन गन्ध धरा का है, ज्योति ज्योतियों का भी।
पूरण जीवन भूतों में है, तप तपस्वियों का भी ॥२८४॥

यह है भूतों का सारे, कहलाता बीज सनातन।
है बोद्धा बुद्धि का, तेजों का तेज यही है पावन ॥
बल का बल भी है, यह ही है रहित काम रागों से।
पूरण छबि प्रकट इसी की, धर्माविरुद्ध कामों से ॥२८५॥

सात्विक राजस तामस सब, इसमें ही भाव खिले है।
या यों कहिये गुण तीनों, इसमें से ही निकले है ॥
व्यापक होने के कारण, यह गुण से बद्ध नही है।
पूरण सब गुण इसमें ही है व्याप्य स्वतन्त्र नहीं है ॥२८६॥

इन त्रिगुण मयी भावों से मोहित यह है जग सारा।
सकता न जान, यह अव्यय, आनन्द स्वरूपी धारा ॥
इसकी तरंग रूपा है, दैवी गुणवाली माया।
पूरण वह ही तरता जो, इस मायापति को पाया ॥२८७॥

निश्शेष रूप से यह हो, सब वर्तमान को जाने।
सब भूत भविष्यत को भी, कोई भी इसे न जाने॥
यह कवि पुराण अनुशासक, अणुओं में भी अणु यह ही।
पूरण धारक सब का, यह तम परे, ज्योति है यह ही।२८८

इसको महात्मा जन पाकर, संसिद्ध परम गत होते।
दुःख धाम अनित्य जगत में, फिर कभी न पैदा होते॥
ब्रह्मा पर्यन्त सभी जग है आने जाने वाला।
पूरण फिर जन्म न पाता है, इसको पाने वाला॥२८९॥

दिन युग सहस्त्र ब्रह्मा का, निशि भी है इसी बराबर।
अव्यक्त उसी से हैं, दिन में व्यक्त प्रगटते आकर॥
सब भूतवर्ग परवश हो, पैदा होता मनु के दिन में।
पूरण परवश होकर ही, होता विलीन फिर निशि में।२९०

यह चक्र चला करता है जिसमें, वह सर्व परे है।
व्यक्तों अव्यक्तों से, वह अव्यक्त स्वरूप धरे है॥
है वही सनातन केवल भूतों के मिट जाने पर।
पूरण अवशेष सभी का, अज अमर अनादि अनश्वर।२९१।

अक्षर अव्यक्त कहाता, गति परम इसे ही कहते।
पुनरागम यहाँ न होता, सब परम धाम है कहते॥
अव्यक्त मूर्ति के द्वारा, सारा जग व्याप्त हुआ है।
पूरण सब भूत इसी में, उनमें यह नहीं बँधा है॥२९२॥

आकाश व्याप्त जिमि, मारुत चक्कर करता है नभ में ।
वैसे सब भूत अवस्थित, नाच करते हैं इसमें ।।
सब भूत प्रकृति में जाते, इसकी गोद महा प्रलय में ।
पूरण इसमें ही होते है पैदा, सृष्टि उदय में ।।२९३।।

यह प्रकृति इसी के वश ही, करती है रचना ।
सब भूत बँधे हैं जिससे, यह प्रकृति कहाती फुरना ।।
ये सभी कर्म फुरने के हैं, इसको बाँध न सकते ।
पूरण उदासवत् को इसे आसक्त, बना किमि सकते ।२९४।

इसके वश सचराचर जग है, प्रकृति बनाया करती ।
इसके ही वश होकर के, संहार सभी का करती ।।
क्रतु यज्ञ स्वधा औषधि है, है मन्त्र अज्य भी यह ही ।
पूरण यह ही है पावक, फिर है हविष्य भी यह ही ।२९५।

है पिता जगत भर का यह, है यही जगत की माता ।
है यही पितामह सबका, कारण सबका कहलाता ।।
यह वेद्य प्रणव पावन है ओंकार बीज वेदों का ।
पूरण कारण भी यह है, ऋक्साम यजुर्वेदों का ।।२९६।।

यह सम है सब भूतों में, प्रिय द्वेष्य न इसका कोई ।
उत्पत्ति न जाने इसकी, सुरगण महर्षिगण कोई ।।
सारे देवों ऋषियों का बस, यही आदि कारण है ।
पूरण इससे अणु, अणु है इसमें ही सब क्षण क्षण है २९७

शमदम सत और क्षमा सब, धीज्ञान असंमोहादिक ।
सुख-दुःख अभाव भाव इससे ही होते भय अभयादिक ।।
यश अयश दान तप समता, संतोष अहिंसा सारे ।
पूरण ये भाव सभी हैं, इससे ही न्यारे न्यारे ।।२९८।।

सप्तर्षि व मनु सनकादिक, इसकी मानस रचना है ।
जिनसे उत्पन्न यहाँ की यह सारी लोक प्रजा है ।।
है यही सभी की उत्पत्ति, है यही सभी का पालन ।
पूरण इससे ही होता, सचराचर का संचालन ।।२९९।।

स्वयमेव स्वयं को जाने, अनुभव से वहाँ शुद्ध मति ।
भूतेश भूत भावन है, देवों का देव जगतपति ।।
इसके कदापि विस्तारों का, अन्त नहीं हो पाता ।
पूरण भूतों के आशय में, आत्मा यह कहलाता ।।३००।।

है आदि यही भूतों का, है अन्त यही भूतों का ।
भ्रम से सत हैं, ये लगते है, मध्य यही भूतों का ।।
केवल सारे भूतों का, जो भी है बीज यही है ।
पूरण चर अचर सभी में, इससे कुछ भिन्न नहीं है ।।३०१।

अब तक तो ब्रह्म निरूपण में, शास्त्रीय ज्ञान भरमार रही ।
इसमें स्वरूप निष्टा की सुन्दर नहीं, एक झनकार रही ।।
ब्रह्मैक्य प्राप्त वह जीव उलट कर, साक्षी में निज भान करे
तब पूर्णनाथ मिट जाय देह की, सब प्रतीति निज ज्ञान करे

अभ्यास नहीं करना होगा, जब सहज समाधि लगायेगा ।
तब अहं फुरन में निशि दिन उसको, ब्रह्म ब्रह्म दरसायेगा ।।
बाहर के दृश्य वस्तु विषयों का, होश सहज ही छूटेगा ।
श्री पूर्णनाथ तब नहीं अखण्डाकार, तार वृत्ति टूटेगा ।३०३।

आदत प्रवाह से तन इन्द्रिय की, शुद्ध मन से क्रिया होती ।
जिसके द्वारा सामान्य वृत्ति की, है रक्षा संज्ञा होती ।।
मनयुत इन्द्रिय या केवल मन से, होती हैं जब क्रिया वही ।
है पूर्णनाथ यह वृत्ति विशेष है चिन्तन में भी वृत्ति यही ३०४

जिसकी यह ब्रह्माकार रहे, जो वृत्ति विशेष कहाती है ।
निष्ठा स्वरूप में उसी पुरुष की, सत्य बताई जाती है ।।
सामान्य वृत्ति से होते है, व्यवहार सभी उसके तन के ।
पूर्णनाथ स्वतः वशीभूत प्रभु में, उसके लक्षण मन के ।३०५।

शंका हो जनक प्रभृति के, कैसे चलते थे व्यवहार सभी ।
तो वे थे बाहर के धर्मों से, विचलित होते नहीं कभी ।।
शुकदेव लँगोटी तुम्बी की रक्षा करने को घबराये ।
पर पूर्णनाथ नृप कहे, जनकपुर जलता है तो जल जाये ३०६

दो धर्म बुद्धि के होते है, आगन्तुक सहज कहे जाते ।
है निज स्वभाव का सहज धर्म, आगन्तुक बाहर से आते ।।
जैसे कुपुत्र के दुर्व्यवहारों पर, दुःख होता माता को ।
वह पूर्णनाथ उसके सुधार हित, करती टेर विधाता को ३०७

दुःख है आगन्तुक पर सुधार हित, सहज धर्म होना आतुर ।
उस मधुर हास में बालक के खिल उठता है माता का उर
विस्मृत कर सब दुर्व्यवहारों को, मधुर प्रेम लगती करने ।
फिर पूर्णनाथ उसके आलिंगन के प्रमोद से, मन भरने ।३०८

वेदान्त ज्ञान जो आगन्तुक, धर्मों में खिलता है केवल ।
शास्त्रीय ज्ञान उसको कहते, वह नहीं ठहरता आगे चल ॥
जब वही ज्ञान है सहज धर्म में, उसी बुद्धि के खिल जाता ।
वह पूर्णनाथ नर धन्य जगत में, निज स्वरूप में मिल जाता

प्रायः दो गुण मति में होते, वे है निर्मलता चतुराई ।
दोनों सम्भवतः एक बुद्धि में, होते प्राप्य नहीं भाई ॥
रजगुण से होती चतुराई, सतगुण से आती निर्मलता ।
है पूर्णनाथ दोनों के भीतर, अतिमहान अन्तर मिलता ३१०

रजगुण सम्भूता चतुराई में, पड़ती जब सात्विक छाया ॥
परिणत करती है कुशल रूप में, संज्ञा दक्ष वही पाया ।
जब सतगुण जाया निर्मलता में, सतगुण की छाया आती ॥
तब पूर्णनाथ निर्मलता वह, सच्चे विवेक में ढल जाती ३११

है जिसका अन्तःकरण दक्ष, वेदान्त धुरन्धर हो जाये ।
यौक्तिक शास्त्रीय प्रमाणों का, तब ज्ञान कुशलता मिल जाये
पर उसे अखण्डाकार वृत्ति का, मिलना सम्भव कभी नहीं ।
है पूर्णनाथ निशिदिन जिसका वह, ब्रह्म विषय अतिरिक्त नहीं

बालक के अल्पावस्था में मरने पर, क्षण भर सब रोते ।
पर क्या उस संतप्ता माता के तुल्य, रुदन सबके होते ।।
ऐसी ही गति समझो भाई, जिसको विवेक हो जायेगा ।
वह पूर्णनाथ अब बात कुशलता की, फिर नहीं बनायेगा ३१३

हर अद्रि नहीं मणि मिलती है, मिलती न सभी करि गजमुक्ता
हर बन में चन्दन नहीं मिले, वैसे ही हर सीपी मुक्ता ।।
इस भाँति साधु सच्चे हर थल पर, कभी नहीं पाये जाते ।
हाँ पूर्णनाथ कहलाने को तो, सभी साधु ही कहलाते ।३१४

बनने लगते सब ही नेता, मंचो पर मधु भाषण देते ।
लख जलता देश गरीबी से, पर क्या लम्बी आहें लेते ।।
पतिव्रता कहाना सरल महा, पर कठिन महा सचमुच होना
बस पूर्णनाथ वास्तविक साधु का, है ऐसे दुर्लभ होना ३१५

साक्षी स्वरूप को खोकर, जीव संगी बन जाता फुरने का ।
लेता न नाम सच्चिदानन्द, निष्ठा के प्रति फिर मुरने का ।।
करता है लक्ष्य विषय को जिस, उस इन्द्रिय से बाहर जाता
या पूर्णनाथ फिर जगत मानसिक में भीतर चक्कर खाता

आकृति लेता है खींच विषय की, रागी हो अपने मन में ।
अनुसार उसी कर देता है, आरम्भ भटकना जीवन मे ।।
है यही वासना कहलाती, अज्ञान मूल मे है रहता ।
वस पूर्णनाथ अज्ञान जगत का, कारण हुआ वेद कहता ३१७

अपमानित होकर मित्रद्रोह का, चित्र खींच गुरुद्रोण लिये ।
तत्पर हो पाँचों पाण्डव को, शस्त्रास्त्र आदि उपदेश किये ।।
फिर द्रुपद द्रोण से अपमानित जब, अर्जुन उन्हें पकड़ लाये
कर पूर्णनाथ यज्ञादि तीन संताने, प्रतिकृति हित पाये ३१८

मय दानव की रचना में, दुर्योधन का जो अपमान हुआ ।
था वही चित्र मन में जिससे, पांचाली का पट हरण हुआ ।।
मन में था चित्र द्रुपद तनया के, चीरहरण का गड़ करके ।
तब पूर्णनाथ जंघा चीरे, दुःशासन की भीम पकड़ करके ३१९

दुर्योधन का उपकार, चित्र थे कर्ण ने उतार लिये ऐसा ।
दृढता के सन्मुख उनके, इस उपदेश कृष्ण का भी कैसा ।।
अब भी जिस नर ने चित्त कैमरे में, जैसा फोटो खींचा ।
है पूर्णनाथ जीव बँध फुरने, त्यों फिरता ऊँचा नीचा ३२०

है जगत, चित्र फुरने में जब तक, वह चक्कर लगावेगा ।
वैराग्य जगत से हुआ जिसी दिन, विषय ब्रह्म को कर लेगा
सुख ब्रह्म लोक पर्यन्त तुच्छ, मिथ्या प्रतीत होंगे सारे ।
वह पूर्णनाथ अब धन्य भटकता था, जो चिन्ता के मारे ३२१

निज २ फुरनों में सब ही, यत्किञ्चित प्रभु की इच्छा करते
उस फुरने के अनुसार हुए, उस साधन पथ पर भी चलते ।।
उत्तम जिज्ञासु वही जो तज दे, उभय लोक का सुख सारा ।
है पूर्णनाथ कोई न शक्ति, जो लौटा दे उसकी धारा ।३२२

जब वह मुमुक्षु तन में मैं पन इव, निज स्वरूप में जाएगा ।
ब्रह्म से पाकर ऐक्य वही, फिर जीवनमुक्त कहायेगा ।।
सुख का अनुभव जब बाहर है, विद्वान इसे अज्ञान कहें ।
यदि पूर्णनाथ अपरोक्ष हुआ निज में, बस उसको ज्ञान कहें
अपना ही आत्मा मुक्त रूप, इम ज्ञान उसी का हो जाए ।
बन्धन स्वरूप है वही, अगर विस्मरण उसी का हो जाए ।।
यह भाष्यकार का वचन, हृदयगत जिसको भी हो जायेगा ।
वह पूर्णनाथ जग से उपरत हो, सहज समाधि लगायेगा ३२४

जीव मरने के समय निज वासना अनुसार ।
जिस विषय की ओर अभिमुख दृष्टि देत पसार ।।
त्याग यह तन, प्राप्त करता दूसरा जब देह ।
नाथ पूरण उस विषय के क्षेत्र, करता नेह ।।३२५।।

वासना से प्राप्त होते है, विषय के भोग ।
कर्म देते भोगने के हित, सुयोग कुयोग ।।
कोटि के जिस जीव के, है कर्म के समुदाय ।
नाथ पूरण वह परिस्थिति, देह वह मिल जाय ।।३२६।।

वासना आबद्ध, जैसे रूप की, हो दृष्टि ।
उस के अनुसार, रचते कर्म वैसी सृष्टि ।।
पुण्य न्यूनाधिक्य से होता, परिस्थिति भेद ।
नाथ पूरण जीव पाता, हर्ष है या खेद ।।३२७।।

पुण्य यदि उत्कृष्ट, मिलतीं योनियाँ श्रीमंत ।
देव से आरम्भ करके, इन्द्र के पर्यन्त ।
किन्तु मध्यम पुण्य तो, नर देह से धनपाल ॥
नाथ पूरण है परिस्थिति प्राप्य तक भूपाल ॥३२८॥

पाप का प्राधान्य, कीट पतंग से गजराज ।
अधम मिलते देह, तत अनुरूप ही सब साज ॥
भोगते सब रूप ही ये, किन्तु कछुक स्वतन्त्र ।
नाथ पूरण कुछ उसी को, भोगते परतन्त्र ॥३२९॥

अन्य विषयों की दशा, इस भाँति ही लो जान ।
शब्द परस गन्धरूप रस, सुत वित बड़ाई मान ॥
वासना अनुसार गति है, या विषय की प्राप्ति ।
नाथ पूरण कर्म तुल्या है, परिस्थिति व्याप्ति ॥३३०॥

देह जो है प्राप्त होती, मृत्यु के पश्चात् ।
चित्र उसका जीव के सन्मुख, प्रगट ही दरसात ॥
बस उसी में जीव यह, करता तुरन्त प्रवेश ।
नाथ पूरण है ग्रहण करता, उसी का वेश ॥३३१॥

विश्व के अन्तःकरण ले वासना के चित्र ।
बीज ज्यों रहते पड़े, अपवित्र और पवित्र ॥
मन वही तन औ परिस्थिति रच, करे तैयार ।
नाथ पूरण जीव तत्र प्रविष्ट, कर व्यवहार ॥३३२॥

प्राप्त तैजस नाम करता है, वही अब जीव।
स्वप्न का संसार होता, तेज रूप अतीव ।।
कर्म को करना, रहा फल पाप पुण्य प्रदान।
नाथ पूरण वासना मय, देह में भुगतान ।।३३३।।

वासना मय सब परिस्थिति, और सकल शरीर।
स्वप्न ज्यों जिज्ञासु उत्तम को, करे सुख व पीर ।।
दृष्टि ही बस सृष्टि है, क्रम संस्कार विहीन।
नाथ पूरण दृष्टि करता, ब्रह्म में तल्लीन ।।३३४।।

जीव, मन्द मुमुक्षु क्रम मति में, करें तन त्याग।
कर्म के अनुसार, उठती सब परिस्थिति जाग ।।
वासना की दृष्टि से होता वहाँ गति मान।
नाथ पूरण सुख दुःखों का, तत्र होता भान ।।३३५।।

शास्त्र है श्रोता हितैषी, चाहते कल्याण।
बुद्धि के अनुसार उसके, कल्प लेत प्रमाण ।।
क्रम निरूपण में, यही है शास्त्र का अभिप्राय।
नाथ पूरण मुक्त, मन्द मुमुक्षु भी हो जाय ।।३३६।।

एक विद्युत के सहारे चित्र क्षण प्रत्येक।
है बदलते किन्तु फिर भी, शक्ति विद्युत एक ।।
कार्य चित्रों में सभी, वह कर रही हर काल।
नाथ पूरण चित्र पट पर, चित्र हैं भ्रम जाल ।।३३७।।

दृष्टि से उस चित्र के, जन्मादि हैं जीवत्व ।
किन्तु विद्युत दृष्टि से, है दीखता अमरत्व ।।
चित्र का आवागमन क्रमबद्ध आता दृष्टि ।
नाथ पूरण दृष्टि विद्युत, भ्रान्ति की सब सृष्टि ।।३३८।।

क्रम कथन औ भ्रम कथन, श्रुति को नहीं अभिप्रेत ।
तीव्र मन्द मुमुक्षुओं में, उभय को संकेत ।।
भाव क्रम भ्रम का निवारण, उभय के हो जाय ।
नाथ पूरण जग नहीं त्रय काल, यह दरसाय ।।३३९।।

यदि करो शंका, जगत जब कल्पना है मात्र ।
एक सी अनुभूति जग की, कैसे करे बहु पात्र ।।
भूत पाँचो वृक्ष पर्वत विहग पशु नर दार ।
नाथ पूरण तुल्य कैसे, जब कल्पना व्यभिचार ।।३४०।।

किन्तु यह शका करे, जो दृष्टि क्रम अभिभूत ।
कह रहा जो सृष्टि सम, है सर्व को अनुभूत ।।
एक तो है ही न जग, फिर भी रहा है मान ।
नाथ पूरण मानने में भी वही अज्ञान ।।३४१।।

सम कहाँ उसके लिये, दृष्टान्त हित लो नारि ।
पुरुष को करती प्रलोभन बन वही सुकुमारि ।।
मातृ की है भावना, करता उसी में पुत्र ।
नाथ पूरण फिर कहो, समता जगत में कुत्र ।।३४२।।

क्रम दिखाती सृष्टि थी, तब ज्ञान के भी पूर्व ।
भ्रम दिखाती ज्ञान सन्मुख, सृष्टि तुच्छ अपूर्व ।।
भ्रान्ति में क्रम मान लेता, स्वप्न तैजस जीव ।
नाथ पूरण दौड़ता, फिरता हुआ उद्‌ग्रीव ।।३४३।।

मृत्यु का है आ गया, माता पिता के काल ।
हो रहे यम यातना से, विकल और विहाल ।।
यदि कहीं अन्यत्र है, वह पुत्र उनका भक्त ।
नाथ पूरण उभय का मन, पुत्र में आसक्त ।।३४४।।

है निकल सकते नहीं, तब तक उभय के प्रान ।
पुत्र प्रिय की ध्वनि पड़े, जब तक न उनके कान ।।
अन्य यदि व्यवधान, मानसचित्र, सुत के बीच ।
नाथ पूरण सहज ही, अन्तिम स्वाँस लेगे खींच ।।३४५।।

प्रेमिका के मन गड़े यदि, अमिट प्रिय के चित्र ।
प्राप्त कर लेगी न, जब तक प्राण का निज मित्र ।।
जायेगा बाहर न मन, उस चित्र जग के पार ।।
नाथ पूरण वह करेगी, सतत विरह पुकार ।।३४६।।

यदि वियोगा ही दशा में, प्राणगत हो जाय ।
शास्त्र कह आगे प्रिया को, प्रिय मिलेगा आय ।।
ले सती पति साथ जाती, ज्यों सती के लोक ।
नाथ पूरण प्राप्त करते, उभय प्रेमालोक ।।३४७।।

प्रेमिका की भाँति ही, प्रिय की दशा लो जान ।
शर्त है मन में न आये, अन्य यदि व्यवधान ॥
हीर रंझे की कहानी, है जगत में व्याप्त ।
नाथ पूरण प्रेम है, बलिदान से जो प्राप्त ॥३४८॥

वृत्ति लोभी को लगाती, मात्र धन की ओर ।
टूट जाए वृत्ति में इस, प्राण की यदि डोर ॥
व्यक्ति धन कीड़ा बनेगा, वह कहीं भी जाय ।
नाथ पूरण देव, नर, की टादि का तन पाय ॥३४९॥

लक्ष्य त्यों मुरली मनोहर, कर लिया जो व्यक्ति ।
मन न उसका जा सके, अन्यत्र तजकर भक्ति ॥
बस गई है मूर्ति मन में, नित्य उसका ध्यान ।
नाथ पूरण व्यक्ति को, उस वृत्ति की पहचान ॥३५०॥

मूर्ति मन्दिर में पड़ी, सकती न दे कुछ श्रेय ।
उपनिषद् का ब्रह्म भी, जो लक्षरण से ज्ञेय ॥
वृत्तिगत वह ब्रह्म सुन लो, वृत्तिगत वह मूर्ति ।
नाथ पूरण मुक्ति की, करते समस्या पूर्ति ॥३५१॥

महाप्रलय पश्चात जगत, उत्पत्ति काल जब आता ।
एकोऽहं बहुस्याम् आदि. फुरने में जग खिल जाता ॥
आदि फुरण में ही खिल जाती है, क्रम की भी लीला ।
पूर्णनाथ क्रम भी भ्रम जैसे, भ्रममय जगत रँगीला ॥३५२॥

अहंकार कारण प्रपंच का, जिस विधि मिटे समूल ।
बुद्धि भूतकृत से इसका, सम्बन्ध न होवे मूल ।।
चित्त कोष में बीज वासना का, न बढ़े भण्डार ।
पूर्णनाथ सम्पूर्ण शास्त्र का, मात्र यही है सार ।।३५३।।

साधारण यह कथन किन्तु, है दुर्गम पन्थ अपार ।
बिछी हुई पैरों के नीचे, सान चढ़ी तलवार ।।
घोर तमस में ज्ञात न होती, यहाँ लक्ष्य की राह ।
पूर्णनाथ किमि करे, कोपि सुख से इस पथ की चाह ।३५४।

महा विकट है बुद्धि घुमाना, ग्रंथि भेद के काम ।
ज्यों ज्यों बुद्धि अग्रसर होगी, होगी स्वंय तमाम ।।
जदपि अन्त भल कहते सब, पर यह माया संग्राम ।
पूर्णनाथ है ज्ञात न क्या, इस साहस का परिणाम ३५५।

नहीं नहीं सामान्य ब्रह्म में, होगी वृत्ति विलीन ।
ज्यों ही त्यों अदृश्य होंगे, ये पंचभूत गुण तीन ।।
त्रिगुण प्रकृति का शान्त जहाँ, यह होगा झंझावात ।
पूर्णनाथ ठप लहर उदधि इव, जीव ब्रह्म उत्पात ।।३५६ ।

विषयग्रस्त जनमूढ़ बहिर्मुख, पहले कर्म सकाम ।
करे जगत सुख से बढ़कर, लख स्वर्गिक सुख अभिराम ।।
जो जग किंचित मिथ्या समझें, पर परवश आचार ।।
पूर्णनाथ निष्काम कर्म ले, चाहें अगर उबार ।।३५७।।

भक्ति करे, हठ योग करे, तप करे, करे या ज्ञान ।
जैसे तैसे जगत छोड़कर, लक्ष्य बने भगवान ।।
वृत्ति ब्रह्म को विषय करे, हो रहित विषय को लेश ।
पूर्णनाथ हैं भरे शास्त्र में, मात्र यही उपदेश ।।३५८।।

वृक्ष, विहग, पशु सब ही जीते, पाते सुख-दुःख भोग ।
वृथा जन्म यदि ऐसे जीवे, मनुज योनि के लोग ।।
असन पान भय नींद, मिथुन नर पशु के एक समान ।
पूर्णनाथ तन व्यर्थ न,नर को, यदि स्वरूप का ज्ञान ।३५९।

वही अभागा जिसे न श्रुति का, श्रवरण पाठ है प्राप्त ।
खाने पीने सोने जगने में ही, आयु समाप्त ।।
कृपरण वही है जिसे न अवसर, देते जग के काम ।
पूर्णनाथ श्रुति में ले जिससे, क्षग भर भी विश्राम ।।३६०।।

दीन वही जो शास्त्रों को, पढ़ने में है लाचार ।
भ्रमकर है व्यवहार केसरी, सत परमार्थ सियार ।।
वह असाध्य रोगी है, जिसको श्रुति भैषज में ग्लानि ।
पूर्णनाथ हरि वैद्य निकाले, तत्त्व वनस्पति छानि ।।३६१।।

वह चाण्डाल महा कायर है, पशुओं से भी नीच ।
जो शास्त्रों के प्रति उदास हो, आँखे लेता मीच ।।
मूर्खों में भी वही मूर्ख, जो विद्या पढ़े समस्त ।
पूर्णनाथ श्रुति अरुचि व्यर्थ सी, काया होगी ध्वस्त ।।३६२।।

क्रूर कुटिल निष्ठुर वह, पापी अत्याचारी चोर।
श्रुतियाँ सुमिरि न पुलक स्वेद से, होता आत्म विभोर॥
वह बालक नादान न समझा, जो श्रुति का भावार्थ।
पूर्णनाथ व्यवहार कमाया, फूँक दिया परमार्थ॥३६३॥

वही करेगा सूकर कूकर, तन में बैठ विहार।
तनिक नहीं जीवन जो, बदला वेदों के अनुसार॥
श्रुति की नौका चढ़ने में जिसका मन जाता ऊब।
पूर्णनाथ वह निर्विलम्ब जग जलधि में मरेगा डूब॥३६४॥

शास्त्रों के अभाव में, सब पदवी जायेगी भूल।
जिस दिन गंगा को जायेंगे, भस्म अस्थि के फूल॥
जीव सहित था जब श्रुति गंगा विमुख, निरत परदार।
पूर्णनाथ अब मृतक देह क्या, तारे गंगा धार॥३६५॥

कामादि विकारों की होती है, रजो तामसी वृत्ति।
चंचलता में विद्युत समान औ जड़ता में ज्यों भित्ति॥
होती है नश्वर शलभ सदृश, मिटने में दीप प्रकाश।
है पूर्णनाथ उत्थान पतन इव, लहर बन्ध में पाश॥३६६॥

इस भाँति वृत्ति कामादि, तस्करों का बढ़ता उतपात।
जब चित्त भूमि को आवृत, करती प्रबल अविद्या रात॥
सद्वृत्ति विवेक विरति का भी यदि होता है सद्भाव।
ये पूर्णनाथ उनके प्रति उठतीं, ले दृढ़ प्रादुर्भाव॥३६७॥

तब शुद्ध सतोगुरण जन्य वृत्तियाँ, विजयी विरति विवेक ।
जब युत शरणागति धैर्य शान्ति, साहस दृढ़त्व हों टेक ।।
रज तम सम्पत्ति असुरों की है, देवों की सम्पति सत्त्व ।
पर पूर्णनाथ साहाय्य ईश का, शक्ति जिधर देवत्व ।।३६८।

ऐसे अभाव में पूर्ण ज्ञान, के और पूर्ण वैराग्य ।
जब नहीं समझता भोला मन, क्या ग्राह्य और क्या त्याज्य
निज साधुपने का उनको, किंचित रहता ही अभिमान ।
तब पूर्णनाथ सतमति ही उनका, कर सकती कल्यान ३६९

मति के प्रकाश में पाकर भी, मन विषयों का संयोग ।
शैथिल्याक्रान्त बना सा, कर सकता न हर्ष से भोग ।।
होगा ही वह उपराम उधर से, आकर मति के पास ।
बस पूर्णनाथ अनुसरण करेगा, बना उसी का दास ।।३७०।

मन का स्वभाव विद्युत इव, चंचल समझावे यदि बुद्धि ।
तज सकता यह न विषय, हो सकती नहीं चित्त की शुद्धि ।।
यदि ऐसी मन की दशा, न छोड़े सन्मुख विषय स्वतन्त्र ।
हो पूर्णनाथ झट विषय विरत, सुन लेगा ज्यों परतन्त्र ३७१

वैसे ही यावत विषय भोग में, सुख-दुःख उठते जाग ।
अनुकूल और प्रतिकूल दृष्टि जब, देती द्वेष व राग ।।
इस सुख-दुःख दोनों का कारण है, मात्र एक आनन्द ।
यदि पूर्णनाथ अज्ञात तत्व यह, तो न कटे भ्रम फन्द ।३७२

फिर अन्य भ्रान्ति है निज स्वभाव वश, करता नर व्यवहार
प्रारब्ध काल औ प्रकृति गुणों से, हो करके लाचार ।।
वह अपने सुख का भूखा है. हर कृति में विहित निषिद्ध ।
हो पूर्णनाथ सुख हित पागल, है द्वन्द्व शरों से विद्ध ।३७३।

वह नहीं समझता कृपा, क्षमा, सन्तोष, प्रेम, उपकार ।
जो भी करता हूँ सब मेरे सुख के ही है उपचार ।।
परिवार जनों के पालन में भी, होते जात प्रयत्न ।
है पूर्णनाथ बस लक्ष्य सभी का, अपने सुख का रत्न ।३७४।

कामी को कामाकार वृत्ति में, नहीं दीखता दोष ।
लोभादि इतर में उसे दीखता है, पापों का कोष ।। .
जो महा मद्यसेवी है, भक्षण करता किन्तु न मांस ।
है पूर्णनाथ समसुधा मद्य, पर मांस घोंटती सांस ।३७५।

श्रेष्ठत्व तथा तुच्छत्व वस्तु का, सकता कर न प्रभाव ।
यदि उभय पक्ष का, हो न तुम्हारे वृत्ति ज्ञान में भाव ।।
बस यही श्रेष्ठता और तुच्छता, मन से कर निर्मूल ।
तुम पूर्णनाथ जग के पदार्थ का, शोक करो मत भूल ।३७६।

शोक जग का है तुम्हें, वह है कदापि न योग्य इसके ।
तुच्छ मिथ्या मोह में, तुम मर रहे हो व्यर्थ फँसके ।।
'जीघ' माया तन्तु निर्मित, डोर ममता की उठाकर ।
नाथ पूरण बाँधता जग वस्तु, पूरा बल लगाकर ।।३७७।।

आग पर्दे पर सिनेमा के, लगे मानो भयंकर ।
तुम नगर में रह रहे जिस, मान लो वह भस्म जलकर ॥
तो कभी भी योग्य क्या तुम को, नगर का शोक करना ।
नाथ पूरण शोक यदि करते, पड़ेगा मूर्ख बनना ॥३७८॥

स्वप्न में तस्कर, तुम्हारा माल, तुझको बाँध लूटे ।
अस्त्र शस्त्र प्रहार से, तव परिजनों के प्राण छूटे ॥
जागरण कहते जिसे तुम, प्राप्त होकर उस दशा को ।
नाथ पूरण रो न सकते, सोच सपना दुर्दशा को ॥३७६॥

शोक यदि होता तुझे, वह जागरण भी स्वप्न ही है ।
स्वप्न सुख-दुःख से पृथक जो, जागरण वह ही सही है ॥
जानते हो तुम जिसे, जग जागरण वह स्वप्न ही है ।
नाथ पूरण जागरण में जागरण, निष्ठा सही है ॥३८०॥

शस्त्र से सिर काट जादूगर, किसी नर को गिराया ।
देखते ही दूसरे क्षण में, जिलाकरके दिखाया ॥
दर्शकों के मध्य उस थल, हैं खड़े जो नर विवेकी ।
नाथ पूरण कर न वे चिन्ता सके कुछ, उस मुए की ।३८१।

सेठ अभिनय में अगर है, अन्ध भिक्षुक रूप धरते ।
याचना से जिस किसी विधि, नित्य अपना पेट भरते ॥
एक दिन बीमार पड़ते, दुर्दशाये झेल मरते ।
नाथ पूरण अज्ञ ही, इस दृश्य को लख, शोक करते ॥३८२।

शोक मिथ्या ही तुम्हारा भी, यहाँ पर जो हो रहा है ।
तत्त्व की चिन्ता नहीं, निस्तत्त्व के हित रो रहा है ।।
ज्ञान से करलो निरीक्षण, है जगत का रूप कैसा ।
नाथ पूरण जिस लिये तुम, कर रहे हो शोक ऐसा ।।३८३।

एक तो अज्ञान करके, हो रहा संसार भासित ।
दृश्य जगत अदृश्य तब, जब ज्ञान से अज्ञान बाधित ।।
मान लो जग सत्य ही, फिर भी न चिन्ता योग्य है यह ।
नाथ पूरण प्रकृति से गतिवानधारा का,रूप है यह।।३८४।।

जन्मना मरना निरन्तर,चल रहा निशि दिवस, इसमें ।
पतन औ उत्थान का क्रम, एक भी रहता न इसमें ।।
देव ब्रह्मादिक तलक, पद छोड़ने को बाध्य होते ।
नाथ पूरण भूत परिवर्तित, परस्पर नित्य होते ।।३८५।।

बन्धु तन पूर्वज असंख्यों, काल के मुख में सिधारे ।
सब सिधारेंगे उसी विधि, अनगिनत वंशज तुम्हारे ।।
पर हृदय में शोक उनका, लेश भी तुमको नहीं है ।
नाथ पूरण आज का यह शोक, झूठा क्यों नहीं हैं ।।३८६।

चिर भविष्यत भूत चिर का शोच्य,ढक अज्ञान लेता ।
वर्तमान प्रतीत शोक व मोह, यह अज्ञान देता ।।
वर्तमानोद्भूत सुख-दु ख, बद्धता है अज्ञ लक्षण ।
नाथ पूरण चिन्ह ज्ञानी, अज्ञ लक्षण से विलक्षण ।।३८७।

काल है अध्यस्त उसमें, भिन्न है फिर काल कैसा।
भूत, वर्त्य, भविष्य तीनों में, सदा वह एक जैसा ।।
मान लो यदि सत्य ही है, काल चक्राकार क्रम से।
नाथ पूरण दूर ज्ञानी, नित्य सुख-दु:ख जन्य भ्रम से ।३८८।

दृष्टि में विद्वान के होता, नहीं आना न जाना।
सत्य भी हो किन्तु सम्भव, क्या उसे भय शोक पाना ।।
देह निष्ठा के विषय, आवागमन होते सभी है।
नाथ पूरण आत्म निष्ठा में, नहीं सम्भव कभी हैं ।।३८९।।

बाप माँ दादा चाचा, मामा बहिन गुरु मित्र भाई।
पुत्र पुत्री श्वशुर श्याले, नारि नौकर शिष्य दाई ।।
एक को ज्ञानी न इनमें से, कभी अपना समझता।
नाथ पूरण सर्व को, मिथ्यात्व पावक में भस्म करता ।।३९०।।

करुण कोमल शान्त उर वह, क्रूर निष्ठुर भी नहीं है।
क्षण धर्मा वस्तुओं के, शोक में व्याकुल नहीं है ।।
हैं नहीं निष्ठुर हृदय जन भी, किसी का शोक करते।
नाथ पूरण देह पोषक, किन्तु निज सुख मोद करते ।।३९१।

दु:ख जहाँ उन पर पड़ा, बस हो उठे तत्काल आतुर।
कर न भ्रम निर्लेपता का क्यों सके, वे व्यक्ति निष्ठुर ।।
भेद ज्ञानी और अज्ञानी, उभय में बस यही है।
नाथ पूरण ध्यान दो तुम, ज्ञान भी सच्चा यही है ।।३९२।।

बहुत से ज्ञानी मिलेंगे, ज्ञान की बातें बताते ।
राग वश व्यवहार करने में निषिद्ध, नहीं लजाते ।।
शोक दुःख सुख का न तन के हैं कभी वे छोड़ सकते ।
नाथ पूरण रात दिन, ज्ञानोक्ति रहते नित्य बकते ।।३९३।।

लो अगर दृष्टान्त के हित, मृत्तिका का एक ढेला ।
एक सत्ता पर करेंगे, नाम रूप अनेक खेला ।।
उभय रूप व नाम मिथ्या, है टिके सत के सहारे ।
नाथ पूरण भेद खुलता, ढले को ज्यों पीस डारे ।।३९४।।

अस्तिपन अब भी वही, पर नाम रूप बदल गये है ।
धूल ऐसे नाम में, उस रूप में ही ढल गये हैं ।।
धूल को यदि सान दो, देकर सलिल का योग उसमें ।
नाथ पूरण पिण्ड संज्ञा, रूप अब उस अस्तिपन में ।।३९५।

पिण्ड को भी चाक पर रखकर, बनालो पात्र नाना ।
भिन्न नाम व रूप में,सत्ता को न सम्भव भिन्न पाना ।।
नित्य तुम आधार, तेरे नाम रूप अनित्य अगणित ।
नाथ पूरण देश कालातीत तुम, ये किन्तु सीमित ।।३९६।।

नाम रूपात्मक प्रपंच विलास, कोरी कल्पना है ।
जीव को चहुँ ओर घेरे प्रकृति, करती वंचना है ।।
प्राप्त कर चैतन्य सत्ता, प्रकृति सत्तावान होती ।
नाथ पूरण जीव को भव सिन्धु में, बल कर डुबोती ।३९७।

नाम रूपों को बदलते, नित्य अपने पा रहे हो ।
एक रस हो किन्तु तुम, अनुस्यूत उसमें आ रहे हो ।।
काल अन्तर से तुम्हारा, रूप अन्तर दृष्टि आता ।
नाथ पूरण नित्य तव अस्तित्व, मिथ्या कर दिखाता ।३९८।

जान लो इस भाँति ही जग में, सभी तुझ में व मुझमें ।
दीखता अन्तर मृषा, पर तत्त्व यदि आये समझ में ।।
है वही माया पृथक करती, परस्पर जीव गण को ।
नाथ पूरण तुच्छ उसको, जो भजे राधा रमण को ।३९९।।

देश वस्तु व काल कृत प्रत्यक्ष, रूप व नाम अन्तर ।
उभय रूप व नाम सीमा पार करना, घोर दुस्तर ।।
यह प्रपंच निरा मृषा निस्तत्त्व, जो किंचित विचारो ।
नाथ पूरण है परे वह ब्रह्म, जो इस को निवारो ।।४००।।

देश में उस ही के सभी, तुम, मैं, जगत, जड़ औ चेतन ।
सर्व मिलकर एक है, आनन्द पूर्ण परम निकेतन ।।
नाम रूप प्रपंच कुछ भी है नहीं, बाकी वहाँ पर ।
नाथ पूरण मोह के तव हेतु, यह प्रत्यक्ष अन्तर ।।४०१।।

सूक्ष्म से बी सूक्ष्म इस, सिद्धान्त को वेदान्त भर के ।
कह दिया मैने तुम्हारे प्रति, बहुत विचार करके ।।
पर बहिर्मुख वृत्ति को सम्भव न, इसका विषय करना ।
नाथ पूरण है जिसे अभ्यास, विषयों में बिचरना ।।४०२।।

चार वेदों का यही अन्तिम, हुआ है एक निर्णय ।
लक्ष्य शास्त्रों के विभाजन का, यही है पद निरामय ।।
जीव का अनिवार्य यह है, एक ही कर्त्तव्य केवल ।
नाथ पूरण एक ही यह लाभ, होवे जब सुलभ चल ।४०३।

वृष्टि जल के साथ में यह जीव है नीचे उतरता ।
प्राप्त वसुधा क्षेत्र कर फिर है, वनस्पति रूप धरता ।।
अन्न होकर पुरुष तन में, वीर्य का फिर रूप पाता ।
नाथ पूरण भोग द्वारा, जीव जननी गर्भ जाता ।।४०४।।

रूप धरते विविध जब वह, गर्भ में परिपक्व होता ।
एक दिन नवजात शिशु बन, अवनि तल पर लोट, रोता ।।
कल्प करके नाम कोई, बाप माता राख देते ।
नाथ पूरण मोह में निज, जीव को वे बाँध लेते ।।४०५।।

नित्य वह अभ्यास करता, नाम रूपों का जगत के ।
हो न पाता जीव परिचित ज्ञान से वह सत असत के ।।
पार कर शैशव अवस्था, बालपन के बीच आता ।
नाथ पूरण विगत हो चापल्य,तरुणा में मोह छाता ।।४०६।।

प्राप्त कर प्रौढ़ा दशा, होता तनिक गम्भीर वह जब ।
घेरता जंजाल, गृह आबद्ध कर, जग फन्द से तब ।।
नित्य आशा की नदी होती, प्रवाहित वेग वाली ।
नाथ पूरण तीव्र तृष्णा, बीचियाँ उठतीं निराली ।।४०७।।

काम का तूफान निशि दिन, घोर विप्लव है मचाता ।
तरनियाँ सब नीति धर्मों की, बहा जल में डुबाता ।।
काम मद की बालुका की, राशियों से नेत्र फूटें ।
नाथ पूरण नारियाँ कर नग्न, सब बल वीर्य लूटे ।।४०८।।

राग मकर चपेट पक्षी लोभ, चञ्चु प्रहार करते ।
टरटराते काम, मत्सर क्रोध, मद अहि फुंकार करते ।।
धैर्य साहस वृक्ष पर्वत, हर हरा कर टूट गिरते ।
नाथ पूरण जीव बहता, मोह के आवर्त्त घिरते ।।४०९।।

है जरावस्था पहुँचती, बीत जाने पर जवानी ।
छाप लेती है निराशा, रात्रि पावस ज्यों भयानी ।।
व्यक्त काया भूत निर्मित, भूत में फिर विलयपाती ।
नाथ पूरण बाद अव्यक्तादशा, फिर व्यक्त आती ।।४१०।।

नाम रूपों औ दशाओं का, न तांता टूटता है ।
जीव पाकर ज्ञान को, जब तक न भ्रम से छूटता है ।।
जीव को जब तक न, दृढ़ निज रूप का अपरोक्ष अनुभव ।
नाथ पूरण जग उसे, मिथ्या समझना है असम्भव ।।४११।

सत्य हैं उसके लिये, इस व्यक्त तन की सब दशायें ।
जन्मने के पूर्व की भी, सत्य सब उसको कथायें ।।
मृत्यु के पश्चात् का वृत्तान्त भी उसको सही है ।
नाथ पूरण सच गमागम, एक भी झूठा नहीं है ।।४१२।।

सत्य जिसको लग रही यह एक भी ऐसी दशा है।
है अभी अज्ञान में वह, झेलता सब दुर्दशा है ।।
मृत्यु तक जो रह गया यह मोह, उसका लेश भर भी ।
नाथ पूरण अटल जन्मान्तर, सहस्त्र प्रयत्न पर भी ।४१३।

हैं यथा जीवन दशायें, ठीक त्यों पश्चात की भी ।
है सदा क्षण २ बदलतीं, थिर न हो सकतीं कभी भी ।।
दूसरे क्षण जो मृषा हैं, सत्य वह अब भी नहीं है ।
नाथ पूरण आत्म चेतन, नित्य रहता एक ही है ।।४१४।।

यदि करो शंका प्रगट है, नाम रूपों का बदलना ।
देह के इस किन्तु पूर्वा पर, तनों का ज्ञान मिलना ।।
है असम्भव, तो तुम्हारी युक्त यह शंका नहीं है ।
नाथ पूरण भेद का इस, ज्ञात ही कारण नहीं है ।।४१५।।

जीव है अल्पज्ञ अल्प प्रकाश, शास्त्र व वेद कहते ।
तुम निजी अल्पज्ञता का, ठीक अनुभव नित्य करते ।।
सूर्य की तो दृष्टि में, तम का पता चलता नहीं है ।
नाथ पूरण दूर तम खद्योत गृह करता नहीं है ।।४१६।।

पूर्व औ पश्चात् जन्मों का, यथारथ ज्ञान पाना ।
तो रहा बहु दूर, उनका है नहीं कोई ठिकाना ।।
जन्म के इस भी न सब कुछ, बुद्धि नर की जान पाती ।
नाथ पूरण क्षीण स्मृति मति पटल पर, रह मात्र जाती ४१७

काल ज्यों ज्यों दूर पड़ता, ज्ञान त्यों त्यों मन्द पड़ता ।
है उपस्थित ही परिस्थिति, ज्ञान मनुजों का पकड़ता ।।
अल्पता में काल की वह भ्रान्ति करता महतपन की ।
नाथ पूरण अधिक क्या चिन्ता न होती भी मरन की ४१८

इन्द्रियों का योग विषयों, से जहाँ हे बन्धु ! होता ।
विषय में अनुकूलता प्रतिकूलता का भान होता ।।
राग कर अनुकूल में, प्रतिकूल से कर द्वेष लेता ।
नाथ पूरण हर्ष सुख देता उसे दुःख शोक देता ।।४१९।।

यह कहो ये सुख दुःखादिक रह सके थिर एक ही ज्यों ।
है कभी सम्भव नहीं यह नियम, निश्चित जान लो त्यों ।।
आगमापायी सदा आते व जाते ही रहेंगे ।
नाथ पूरण वे सुखी इस द्वन्द्व को ही, जो सहेंगे ।।४२०।।

सुख दुःखों को जो सहन करते रहोगे नित निरन्तर ।
ज्ञान होता जायगा दृढ़तर, व अन्तःकरण शुचितर ।।
जन्म में तुम को किसी, निज रूप का दृढ़ बोध होकर ।
नाथ पूरण मोक्ष होगा, शान्त होंगे द्वन्द्व खोकर ।।४२१।।

ज्ञान में आनन्द में, तव वृत्तियाँ क्रीडा करेंगी ।
शून्य सी तुमको परिस्थिति, अणु न भी पीड़ा करेंगी ।।
क्षय हुए प्रारब्ध के, जब भूत, भूतों में मिलेंगे ।
नाथ पूरण उत्क्रमण नब, तव प्राण पुनः नहींकरेंगे ।।४२२।।

मात्र वस्तु प्रतीति में ही, सत असत का ठीक निर्णय ।
है असम्भव, दृश्य के आधार पर वह ज्ञान भ्रममय ।।
ठूँठ लख तम में समझता दस्यु, नृपचर आ रहा है ।
नाथ पूरण प्रिय प्रिया को प्रेत, भय शिशु पा रहा है ।४२३

एक ही उस ठूँठ में, फिर तीन प्रमिति यथार्थ कैसे ।
कोटि मुख प्रतिबिम्ब दर्पण के, नहीं मुख कोटि जैसे ।।
किन्तु तीनों बुद्धि में है, ज्ञान निज निज सत्य लगता ।
नाथ पूरण तत्व निर्णय तक, न कोपि असत्य कहता ४२४।

है मृषा जो वस्तु, सम्भव है न उसका सत्य होना ।
सत्य तुल्य प्रतीति भी भ्रम से, दिखाती सत्य होना ।।
सत्य है जो वस्तु वह न कदापि है, हो असत सकती ।
नाथ पूरण नाम रूप मिटे, भले वह मिट न सकती ।।४२५।

ज्ञान दोनों सत असत का, युक्ति से विद्वान करते ।
देखते परिणाम जिसका सत्य, उसको सत्य कहते ।।
सकल जगत प्रपंच मिथ्या, ब्रह्म ही है, अन्त सबका ।
नाथ पूरण निषिध मुख से है, निरूपण ब्रह्म सत का ४२६

ध्यान से खोजो पुरुष नृप, वह कदापि नहीं मिलेगा ।
ठीक बस इस भाँति ही प्रिय, प्रेत का न पता चलेगा ।।
ज्ञान से सबको हटाते, ठूँठ तक तुम पहुँच जाओ ।
नाथ पूरण अन्त पाकर, सत असत का भेद पाओ ।।४२७।

सूक्ष्म अनुसन्धान पृथ्वी का करो, वह मात्र जल है ।
बस तुरत जल को विचारो, तेज रूपी वह अनल है ।।
तेज को ढूँढ़ो मिलेगा वायु, अन्तिम बिन्दु पर चल ।
नाथ पूरण फिर बढ़ो, तब वियत अध्यवसाय का फल ४२८

वेद कह नेति नेति, हैं जिस तत्व का संकेत करते ।
शान्त होगी खोज तब, उस तत्त्व को ही प्राप्त करके ।।
नाम नाना, रूप नाना, जगत के व्यवहार नाना ।
नाथ पूरण सत्य लगते, लुप्त होंगे फिर न पाना ।।४२९।।

भूत मिथ्या है अगर तो, इन्द्रियाँ भी भूत की हैं ।
प्राण मन औ बुद्धि का कारण, सभी ये भूत ही है ।।
भूत इनके विषय भी हैं, ज्ञेय सारे बाह्य जग के ।
नाथ पूरण इस तरह से हैं मृषा ही ज्ञान सबके ।।४३०।।

विषय इन्द्रिय अहं को, मिथ्यात्व पावक से जलाकर ।
भस्म करदो, शेष में बस रह गया, वह सत्य आकर ।।
थूल तन को लिंग में, तन लिंग कारण देह में कर ।
नाथ पूरण भस्म उसको आप में, तुम शेष आकर ।।४३१।।

तत्त्व अविनाशी वही सर्वत्र, जो व्यापक परम है ।
हो न बाधित ज्ञान से भी, जो वही आत्मा चरम है ।।
नाश उसका है कहाँ, अतिरिक्त अणु भी है न जिससे ।
नाथ पूरण है निरूपण ब्रह्म, इस विधि विहित सुख से ४३२

नाम भी वह ब्रह्म ही है, रूप भी वह ब्रह्म ही है ।
नाम रूपों से परे, जो शून्य वह भी ब्रह्म ही है ।।
एक भी वह ब्रह्म नाना रूप भी वह ब्रह्म ही है ।
नाथ पूरण ज्ञेय ज्ञाता ज्ञान, व्यापक ब्रह्म ही है ।।४३३।।

मृत्तिका घट में यथा, पट में यथा है तन्तु व्यापक ।
मञ्च में ज्यों काष्ठ औ आभूषणों में स्वर्ण व्यापक ।।
त्यों जगत में पूर्ण हो, जगदीश केवल व्यापते हैं ।
नाथ पूरण ईश जगदाकार हो, इम भासते हैं ।।४३४।।

हैं प्रतीत तुम्हें अभी अज्ञान, वश जो देह इनके ।
अन्त वाले है, मृषा हैं, नाम मिथ्या रूप जिनके ।।
आदि वाली, अन्त वाली, नाम वाली, रूप वाली ।
नाथ पूरण वस्तुएँ मिथ्या, अविद्या मूल वाली ।।४३५।।

किन्तु यह सिद्धान्त है, होती नहीं, तब तक नकल है ।
जिस किसी भी रूप में, जब तक नहीं होता असल है ।।
झूठ से व्यवहार सम्भव हो, कभी कैसे कर सकेगा ।
नाथ पूरण सत न जो, विश्वास का आश्रय रहेगा ।।४३६।।

रूपमय औ नाम मय यें देहें, सब मिथ्या जदपि है ।
सत्य के आधार पर आश्रित हुए, चलते तदपि है ।।
नित्य आतमा है, शरीरी जो बना आधार सबका ।
नाथ पूरण अप्रमेय स्वरूप, साक्षी पूर्ण जग का ।।४३७।।

वह प्रमाणों से किन्हीं भी हो, विषय पाता नहीं है।
जानने वाला सभी का, ज्ञान में आता नहीं है॥
देखती जो आँख है, वह दीखने में है न आती।
नाथ पूरण दीखती जों वस्तु, वे कुछ लख न पाती ॥४३८।

ब्रह्म सत्ता प्राप्त कर, कर्मेन्द्रियाँ सब कर्म करतीं।
ज्ञान इसके ही लिये, ज्ञानेन्द्रियाँ भी ज्ञान करतीं॥
देखकर प्रतिबिम्ब उस आनन्द का, मन भूल जाता।
नाथ पूरण सुख विषय में मान, वह चक्कर लगाता।४३९।

सिद्ध है अतएव यह जग, कल्पना का चित्र ही है।
भ्रान्ति जन्य प्रतीति इसकी, तत्वतः कुछ भी नहीं है॥
एक रस हो पूर्ण घन वह नित्य, एक अखण्ड चेतन।
नाथ पूरण है न उससे, रिक्त जग का एक भी कन।४४०।

ज्ञान औ अज्ञान दोनों से, विलक्षण जान इसको।
ब्रह्म हत्या भी करे तो, पाप लग सकता न उसको॥
किन्तु तन में आत्म मति कर, मारता जो एक कीड़ा।
नाथ पूरण भोगता नर्कादिकी, वह घोर पीड़ा ॥४४१॥

थूल तन अभिमान कर, वह जन्म पाता मृत्यु पाता।
जीव भी वह सूक्ष्म तन, अभिमान करके ही कहाता॥
वह कभी देवादि होता, मनुज या कीटादि होता।
नाथ पूरण हो न होकर व्यक्त, औअव्यक्त होता ॥४४२॥

जन्मना मरना जगत में और होना या न होना ।
नित्य ही रहता प्रवाहित, भूय होकर भूय होना ।।
किन्तु आत्म हैं सदा इन से, विलक्षण चिन्ह वाला ।
नाथ पूरण लक्षणा से, प्राप्य ऐसे रूप वाला ।।४४३।।

अज कहाता है, न उसका जन्म होता है, कभी भी ।
नित्य कहलाता, न पाता मृत्यु भी वह है कभी भी ।।
वह नहीं होता यथा जग दृश्य, होते नित्य रहते ।
नाथ पूरण सब उसे शाश्वत, सनातन रूप कहते ।।४४४।।

ब्रह्म है आत्मा परम वह है सदा रस एक रहता ।
भ्रान्ति कल्पित दृश्य जग, उसमें बदलता नित्य रहता ।।
नाम रूपात्मक शरीरों में, विकारों के हुए भी ।
नाथ पूरण नहिं प्रभावित, सृष्टि प्रलयों के हुए भी ।४४५

चित्रपट पर चित्र विविध, प्रतीत होते भाँति नाना ।
इस तरह जीवादि का, जग में विदित आना व जाना ।।
चित्र का आधार पर्दा नित्य रहता है, अचल ज्यों ।
नाथ पूरण जगत आश्रय ब्रह्म रहता, एक रस त्यों ।४४६।

है अवश्यम्भावि जग का, नाश जिसने जान रक्खा ।
जगत क्षणभंगुर पना, दीपक शिखा इव जान रक्खा ।।
जन्मना मरना जगत भीतर, निरन्तर चल रहा है ।
नाथ पूरण ज्ञात जिसको, विषय विष जो मिल रहा है ।४४७

यदि भला वह तत्त्व अविनाशी, कदाचित जान पाए ।
नित्य व्यापक ब्रह्म का यदि कर, कदाचित ज्ञान पाए ।।
ज्ञान पाए सत्य आत्मा, जन्मता मरता नहीं है ।
नाथ पूरण निरतिशय निरपेक्ष, सुख सत्त भी यही है ।४४८।

स्वप्न में भी वह विषय की ओर, कैसे जा सकेगा ।
दौड़ कैसे दीन हो, सुख हेतु पुनः लगा सकेगा ।।
वृत्ति आठोयाम अपनी, वह अखण्डाकार करके ।
नाथ पूरण नित करेगा, प्रभु विषय जग त्याग करके ।४४९

जागकर फिर मूर्ख सोने के लिये, इच्छा करेगा ।
मूर्ख जो विद्वान होकर, दुष्ट नीचों में रहेगा ।
जो समय खिलवाड़ में है, बालकों के नष्ट करता ।।
नाथ पूरण नर वही बढ़ बालकों से, मूर्ख रहता ।।४५०।।

कीच में क्यों कर फिरेगा, देवसरि जल स्नात होकर ।
द्रव्य जादू का लुभाये क्या, पुरुष को ज्ञात होकर ।।
परम द्रव्य स्वरूप का निज, ज्ञान करके लक्षणा से ।
नाथ पूरण क्यों भला आबद्ध हो, त्रय ऐषरणा से ।।४५१।।

शंका हो यदि जीव नाचते, चित्र सदृश या कठपुतली ।
पाप पुण्य फिर क्यों लगते हैं, बन कर के उसको असली ।।
जीव भूलकर निज स्वरूप को, बनता अहं फुरन साथी ।
पूर्णनाथ बनता अभिमानी, होकर मतवाला हाथी ।।४५२।

साक्षी का सत्यत्व अहं फुरने में, होता प्रतिभासित ।
वह फुरना कर्त्तापन में, सत्यत्व बुद्धि करती वासित ।।
उदय हुए बस विधि निषेध से, पुण्य पाप न्यारे न्यारे ।
पूर्णनाथ अव्यर्थ कर्म है, देह आत्म मति कृत सारे ।।४५३।।

फुरण रचित मिथ्या होने पर भी, सच्चे इव बन जाते ।
ले उसकी सत्यत्व दृष्टि को, पाप पुण्य सत दिखलाते ।।
अहं फुरण रस हित सत मति से, क्रिया काल में कृति करता
पूर्णनाथ अपि भोग काल में, रस मति, सत मति ही धरता

शंका हो रस बुद्धि सुखों में, अनायास ही हो आती ।
दुःख में तो रस बुद्धि नहीं, यह कभी कहीं देखी जाती ।।
अन्य भले दुःख से हैं, किन्तु सुख भोग काल में यह पामर ।
पूर्णनाथ निज आँख बन्द कर लेता, सहें कहाँ यह ईश्वर ।४५५

मानव में भी नीति यही है, प्रभु प्रेरक अन्तर्यामी ।
दुःख भोग हित बाध्य करें, तो कैसे उनकी बदनामी ।।
अहं फुरण के साथ न मिलकर, कर्त्ता अगर नहीं बनता ।
पूर्णनाथ परवश प्रभु द्वारा, भोक्ता भी कैसे बनता ।।४५६।

सब भूतों के हृदय देश में, ईश्वर बैठ विराज रहे ।
यन्त्रारूढ़ हुए जीवों को माया से, भरमाइ रहे ।।
नर, मर्कट, खग रीछ, दारुयोषित को यथा नचाते हैं ।
पूर्णनाथ नर से भी त्यों नारायण खेल मचाते है ।।४५७।।

देह ट्रेन के चालक हरि हैं, चित्त देवता रूप धरे।
गार्ड देव शिव अहं फुरने के, शक्ति भाप रूपी लहरे ॥
नेत्र देव रवि, लाइट गरणपति, मालिक ट्रेन स्टेशन के।
पूर्णनाथ यों वहु निमित्त हैं, देह ट्रेन मनइंजन के ॥४५८॥

पैंट मेंन यह अहमभिमानी जीव, ध्यान देना भाई।
कैसा है कर्त्तव्य जीव का, कैसी इसको निपुणाई ॥
जदपि ट्रेन तन चलती ही है, उन पाँचों देवों द्वारा।
पूर्णनाथ जिस लाइन भेजे, यह उस पर निर्भर सारा ४५९

दृष्टि वासना युत की जैसी, यही जीव पटरी देगा।
चार देव सह चालक वस निर्दोषी उधर चलायेगा ॥
मलिन वासना पटरी यदि तो, नर्क जायगी मलिन नगर।
पूर्णनाथ या जीव करेगा, अधम योनियों का चक्कर ।४६०

दिया काम की पटरी तो वह, नारि जंकशन जायेगी।
मिली लोभ की पटरी तो वह, धन की राह सिधायेगी ॥
नहीं बीच में रुक सकती, जब एक जगह से छूटेगी।
पूर्णनाथ यह हो सकता, वरु टक्कर खाकर टूटेगी ॥४६१॥

इसी भाँति यदि शुद्ध बासना युक्त, दृष्टि पटरी मिलती।
विरति विवेक स्टेशन से, वह होकर के गाड़ी चलती ॥
नियत लक्ष्य पर निश्चय ही, वह पहुँच किसी क्षण में पाती
पूर्णनाथ कृतकृत्य वहाँ पर, प्रभु को पाकर हो जाती ।४६२

सारे क्षेत्रों का ज्ञाता क्षेत्रज्ञ इसी को कहते ।
कर ज्ञान तत्व का इस ही, अमरत्व प्राप्त मुनि करते ॥
इस तक भूतों से निर्मित, मनबुद्धि पहुँच किमि सकते ।
पूरण वर्णन में, इसके सब वेद शास्त्र है थकते ॥४६३

सर्वत्र अक्षि शिर मुख है, सर्वत्र चरण कर इसके ।
सर्वत्र श्रोत इन्द्रिय है, है सबको आवृत करके ॥
आभास सकल इन्द्रिय गुण है रहित विषय इन्द्रिय से ।
पूरण निगुरण गुण भोक्ता भर्त्ता असंग पर सब से ॥४६४।

चर अचर सभी भूतों के बाहर भी है, भीतर भी ।
है अविज्ञेय अति सूक्षम, दूरस्थ निकट है फिर भी ॥
अविभक्त सभी भूतों में होता, विभक्त इव भासित ।
पूरण उत्पत्ति प्रलय कृत, भर्त्ता कह शास्त्र प्रकाशित ।४६५

है ज्योति ज्योतियों का भी जग तम से परे यही है ।
यह ज्ञान सहित ज्ञाता है, सब थल पर ज्ञेय यही है ॥
उपद्रष्टा अनुमन्ता है, भर्त्ता भोक्ता ईश्वर है ।
पूरण परमात्मा भी है, इस देह पुरुष यह पर है ॥४६६॥

सब भूतों में सम होकर है, यही अचल परमेश्वर ।
नश्वर विनष्ट होने पर है, शेष यही अविनश्वर ॥
निर्गुण अनादि होने से ही, यह परमात्मा अव्यय ।
पूरण निर्लेप अकर्त्ता यद्यपि तन में है तन्मय ॥४६७॥

रवि चन्द्र अग्नि भी इसको, कर सकते हैं न प्रकाशित ।
इस परम धाम को, जाकर होते न भक्त निष्कासित ॥
इसके प्रकाश को ही ले, रवि पावक सोम सितारा ।
पूरण कर देते ही है, आलोकित यह जग सारा ॥४६८॥

पृथ्वी घनिष्ठता बनकर, भूतों को धारण करता ।
रस चन्द्र रश्मि में बनकर, औषधि का पोषण करता ॥
जीवों के तन में रहता है, यह जठरानल बनकर ।
पूरण तन हित में लगते है, अन्न इसी से पचकर ॥४६९॥

यह ही सर्वान्तर्यामी, ज्ञानस्मृति विवेक इसी से ।
यह वेद्य कहा जाता है, वेदों के संकेतों से ॥
वेदान्त भाग का कर्त्ता, वेदों का पूरा ज्ञाता ।
पूरण यह तत्त्व सनातन है, परमात्मा कहलाता ॥४७०॥

यह हृदय देश में बैठा, सब भूतों को भरमाता ।
अपनी माया के द्वारा इव यन्त्रा रूढ़ नचाता ॥
जो सब धर्मों को तज कर बस शरण इसी की होता ।
पूरण छूटा पापों से, शोकों को निश्चय खोता ॥४७१॥

दारुण गरीब की हाय निकल कर, जैसे प्रलय मचाती है ।
उसके हाहाकारों से, लहराती खेती मुरझाती है ॥
चेचक पीड़ित, साजी जल पर ऋतुधर्मा की छाया पड़ती ।
बस पूर्णानाथ यह उभय वस्तु, पाती विकार क्षण में सड़ती

लग जाय नील की छींट सती पर, समर जूझते शूरा पर ।
है शक्ति लुप्त दोनों की होती, सकते वे न काम कुछ कर ।।
जड़ का भी चेतन पर प्रभाव, जब ऐसा कौतुक दिखा सके
तब पूर्णनाथ चेतन फुरने की कौन महत्ता मिटा सके ।४७३

होता विवेक का लोप तभी, जब काम वृत्ति है छा जाती ।
दबते विराग सन्तोष आदि, जब लोभ वृत्ति मन में आती ।।
फुरना संसार बना सकती, फुरना संसार मिटा सकती ।
है पूर्णनाथ वश में जिसके, यह फुरना मुक्त करा सकती ४७४

साधक सचेत तुम हो जाओ, देखो कैसी फुरना माया ।
है गर्भ स्राव भी हो जाता, जब पड़ती मुरदे की छाया ।।
तव वृत्ति ज्ञान का गर्भ गिरे, फिर इस में संशय है कैसा ।
जब पूर्णनाथ कामादि, वृत्ति मुर्दों का संगम है ऐसा ।४७५।

अधिक से जब अधिक जाएँ, पुत्र हो दो तीन ।
त्याग दे घर बार अपि, उत्कट विराग विहीन ।।
वानप्रस्थाश्रम ग्रहण कर, जाय बन तत्काल ।
नाथ पूरण तप करे बन में, वेद आज्ञा पाल ।।४७६।।

थी यही शास्त्रीय आज्ञा, आर्य जन के हेतु ।
कर यही पालन बने थे, विश्व भर के केतु ।।
राजकीया देश अब तो, हो गई वह बात ।
नाथ पूरण हों न बहुसन्तान माता तात ।।४७७।।

किन्तु यह तो दूर, लेना वानप्रस्थी वेश।
जन्मते रहते सुवन, ऋतुधर्म जब तक नशेष ।।
रो रही पृथ्वी, भयंकर ये देख अत्याचार।
नाथ पूरण बने रहै, ये आर्य उसका भार ।।४७८।।

जिस भवन में सुत बधू, तनुजा बनी है दीन।
पालतीं वैधव्य तरुणा काल मन्द मलीन ।।
पुत्र जन्मा मौज करते, उस भवन माँ बाप।
नाथ पूरण हाय दारुण, आज का परिताप ।।४७९।।

वैषयिक सुख से हटे मन, ईश से हो प्रेम।
मोक्ष के हित ले सभी, वह विहित व्रत औ नेम ।।
वासना अंत करण, हो पूर्णरूप समाप्त।
नाथ पूरण अर्थ इस था, देह मानव प्राप्त ।।४८०।।

इस जगत की नाट्यशाला में, बने शुभ पात्र।
कार्य पर अपने कर दिखाये, अशुभ सारे मात्र ।।
यदि भला अभिनय प्रबन्धक कार्य दे अनुकूल।
नाथ पूरण तो कहायेगी न उसकी भूल ।।४८१।।

ऐ अधम नर नारियो, तेरे समस्त चरित्र।
हो रहे विश्वास घातक, पूर्णतः अपवित्र ।।
देखता है प्रभु प्रबन्धक, सब अभी चुपचाप।
नाथ पूरण ज्ञात होगा, शीघ्र अपने आप ।।४८२।।

योनियाँ तुम को मिलेंगी, स्वामि यदि वासिह पूर्ण ।
तब स्वच्छन्द होगी आज की यह चाह ।
शास्त्र का इन योनियों में है न कोपि विधान ।
नाथ पूरण हर्ष के गीत, गाना वहीं पर गान ॥४८३॥

अर्थ संग्रह में लगे, जो आँख करके मींच ।
विधि निषेधों की नहीं परवाह करते नीच ।
रक्त शोषण दीन दुखियों का करें दिन रात ।
नाथ पूरण हैं विलासों में प्रफुल्लित गात ॥४८४॥

धनिक वर्गों का न था, यह शास्त्रतः कर्त्तव्य ।
अर्थ संकट अन्य वर्गों का रहा हर्त्तव्य ।
कर रहे वे भी पूर्ण सत्यता से खेल ।
नाथ पूरण वे मरेंगे योनियों में, संकट झेल ॥४८५॥

शेष इतने पर न, संचय का यही अभ्यास ।
चींटियों मधुमक्खियों की योनियों में वास ।
भी करायेगा उन्हें, फिर तक अनिश्चित काल ।
नाथ पूरण हैं न, जिसमें शास्त्र का जंजाल ॥४८६॥

कर रहे तत्पर हुए जो, देह का शृंगार ।
अस्थि मज्जा चर्म औ मलमूत्र का भण्डार ।
सहज जिसका धर्म देना, नित्य है दुर्गन्ध ।
नाथ पूरण वे बनाना चाहते, उसे शुचि गन्ध ॥४८७॥

विविध विधि भेजत, नित लख शरीर धार
पुरुष होकर बनावे नारियों का प्रवेश है
नारि सर्व कर रहे रंगीन वस्त्र प्रयोग
नाथ पूरण अन्य विधि और दे, विरह वियोग
योनि विरमिट और, तितली, में लीला
तत्र स्वेच्छा से करे शृंगार का उपभोग
कोपि कहे सकता न, यह उनका वह अज्ञान है
नाथ पूरण योग में शुभ स्वयं के सम्मान
क्रोध निष्ठुरता करें और अन्य को दुःख
सर्व अपने रूप है जिनको नहीं चिन्ता
सर्प, बिच्छू आदि हिंसक योनियों के जीव
नाथ पूरण सत्य ही वे जा रहे नीच
मोह ममता में फँसे जो मर रहे हैं
रह नहीं जिनको गई है मृत्यु भी भोग
मृग, पपीहा, चकोर, चातक, कपोत
नाथ पूरण के अधम इन योनियों में होत
इन सभी व्यापार का कारण वही अज्ञान
घेरता मन को बना तम रूप जो परिधान
सच्चिदानन्दात्मता को विस्मरण कर जीव
नाथ पूरण कल्पनाओं को बनाता जीव

घोर दुःख साक्षी फुरण का, कर फुरण का संग।
है भटकता सुख दुःखों में, निज बदलकर ढंग।।
गुणमयी माया दुरत्यय, ठीक प्रभु के शब्द।
नाथ पूरण बीतते हैं, ग्रस्त माया अब्द।।४६३।।

यदि कहो अज्ञान का है, अन्य माया नाम।
ज्ञान का है नाम साक्षी, जो परम सुखधाम।।
है विरोधी ज्ञान औ अज्ञान, उभय पदार्थ।
नाथ पूरण ज्ञान में अज्ञान किमि चरितार्थ।।४६४।।

तो समझलो बाह्य तम, अज्ञान का दृष्टान्त।
अंशुमाली अंशुओं को, ज्ञान रूप नितान्त।।
सूर्यवत समझो पुरुष, जिससे चमकता देह।
नाथ पूरण जायगा हो दूर, तब सन्देह।।४६५।।

सूर्यमण्डल में नहीं तम है, यदपि त्रयकाल।
किन्तु देखो ब्रह्म बेला, बीच प्राची भाल।।
वृद्धि ज्यों ज्यों प्राप्त करता, तरनि रश्मि प्रकाश।
नाथ पूरण अन्ध त्यों त्यों प्राप्त करता नाश।।४६६।।

सिद्ध इससे ज्योति व्यापक का, लिये आधार।
था टिका तम गगन में, धर रूप तुमुलाकार।।
हो रहा जो अब निवारित, दीखता प्रत्यक्ष।
नाथ पूरण जान लो, सिद्धन्त का त्यों पक्ष।।४६७।।

ठीक सायंकाल में, इस प्रात के विपरीत ।
रश्मियों की ज्योति ज्यों ज्यों न्यून होत प्रतीत ॥
वृद्धि पाता दीखता तम, ठीक सायंकाल ।
पूरण देखते देखते ही वह बने विकराल ॥४६८॥

मान लो गृह कक्ष में, तम हो रहा है व्याप्त ।
किन्तु उसका खोज जब, आश्रय करोगे प्राप्त ॥
बस वही तुझको मिलेगी, ज्योति तब सामान्य ।
नाथ पूरण दे रही, तम को अभी प्राधान्य ॥४६९॥

यदि करो शंका, नहीं मिलती तमाधिष्टान ।
ज्योति, जिसमें हो रहा, अध्यस्त तम, ले मान ॥
तब जला दश शक्ति का लट्टू, करो यह जाँच ।
नाथ पूरण ज्ञात होगा, झूठ है या साँच ॥५००॥

है प्रकाशित कक्ष, फिर भी तम पड़ा है शेष ।
ज्योति में यह तम छिपा है, तुम न सकते देख ॥
अब जला शत शक्ति लट्टू, भ्रम करो यह दूर ।
नाथ पूरण ज्योति जिसकी, हो रही भरपूर ॥५०१॥

अंश में जितने बढ़ा, लट्टू शक्ति जन्य प्रकाश ।
अंश में उतने हुआ फिर, कक्ष तम का नाश ॥
दूर तम होता कहाँ से, यदि न था अस्तितत्व ।
नाथ पूरण देखते प्रत्यक्ष हो भ्रान्तितत्व ॥५०२॥

पूर्णता। अर्थ भी निर्वाहित है न तम का अंश।
ज्योति तम दोनों पड़े, सन्देह करते अंश।
लो जलाकर देख, शक्ति सहस्त्र लट्टू ज्योति।
नाथ पूरण कालिमा तम की, अभी क्षय होति॥५०३॥

ज्योति बढ़ती जायगी, ज्यों ज्यों अँधेरा दूर।
चढ़ न जब तक जायगा, परचण्ड नभ में सूर।
ज्योति थी आधार बन, जब अन्धकार प्रतीति।
नाथ पूरण आदि की, ऐसी अलौकिक रीति॥५०४॥

सूर्य की घन ज्योति में, तम नाम की कुछ वस्तु।
प्राप्त होती है नहीं, अन भाव रूपी, अस्तु।
थी न काल प्रतीति में भी, भाव का हो रूप।
नाथ पूरण है अभाव, प्रतीति ही भ्रम कूप॥५०५॥

हैं इसे अध्यस्त कहते, शास्त्र में वेदान्त।
सत्य जिसको मान नर होते उसी में भ्रान्त।
ज्योति आधार रूप से हमको हो रही थी भास।
नाथपूरण अब यही हो रही सर्वाधिष्ठान॥५०६॥

ज्योति का सामान्य और विशेष पाते भाव।
किन्तु इसका हम न पाते हैं कदापि अभाव।
उभय भाव अभाव तम का कर रहे हैं ज्ञान।
नाथपूरण अहो अनिर्वचनीय कहैं विद्वान॥५०७॥

ज्योति का अन्वय हुआ, तम का हुआ व्यतिरेक ।
एक, तीनों काल है, भ्रमकाल केवल एक ॥
सूर्य साक्षी वृत्ति किरणों में, टिका अज्ञान ।
नाथपूरण सत्य भ्रम से, हम इसे लेते मान ॥५०८॥

सामान्य ज्योति के आश्रित, रहता अन्धकार 'तम' करने वाला
अरिहृ वृत्ति चेतन प्रकाश से होता क्रमशः क्षरने वाला ।
पर ज्ञान वृत्ति का होगा जिस अज्ञान उसी वृत्ति का जाएगा
वह पूर्णनाथ, अज्ञान अन्य वृत्तियों का मेट नहीं पाएगा ।५०९।

करता निवृत्त संगीत ज्ञान, संगीत विषय अज्ञान सभी ही ।
पर दूर नहीं कर सकता वह, व्यापार विषय अज्ञान कभी भी ।
व्यापार ज्ञान, संगीत विषय अज्ञान न त्योंहि हर सकता है ।
बस पूर्णनाथ तत विषयक ही अज्ञान, निवारित कर सकता है

दश शत सहस्र इत्यादि लट्टुओं के ही ज्यों यह ज्ञान वृत्ति का
बन सकती है कारण क्रमशः अज्ञान वृत्ति की तम निवृत्ति का
सूरज प्रकाश इव नित्य अखण्डाकार वृत्ति जो बहने वाली
है पूर्णनाथ अत्यन्ताभाव दिखाती ब्रह्म विचरने वाली ।५११।

वह वृत्ति अहं ब्रह्मास्मि नेह नानास्ति शास्त्र में कहलाती है।
जो मूलाज्ञान समूल नाशकर, ब्रह्म भाव में मिल जाती है ।।
अज्ञान, वृत्ति कृत होता है, फिर बाधा जाता वृत्ति ज्ञान से ।
है पूर्णनाथ सब कुछ जाना जाता, बस केवल एक ज्ञान से ।

तब तक रहती वह वृत्ति अखण्डाकार शेष प्रारब्ध जभी तक
होता है कायापात जहाँ वह वृत्ति रहे उपलब्ध तभी तक ।।
सामान्य ज्ञान में, वृत्ति ज्ञान वह, विलय अन्त में है हो जाता ।
हूँ पूर्णनाथ उसको समझाने के हित मैं दृष्टान्त बताता ।५१३।

सामान्य अग्नि के आश्रित होकर टिकी काष्ठ की रहती ढेरी
उससे तो जलती नहीं, किन्तु है तनिक अग्नि रखने की देरी
जो दियासलाई की बत्ती,घिस करके उसके बीच लगाये ।
त्यों पूर्णनाथ वे सभी लकड़ीयाँ,भस्म तुरन्त जल के हो जायें

पर दियासलाई की लकड़ी भी,नहीं वहाँ बाकी[1] रह[2] जाती
केवल इतना ही नहीं,काष्ठ आरुढ़ अग्नि भी है बुझ जाती ।।
रह जाती,वह सामान्य अग्नि जो व्यापक थी भी, काष्ठ अग्नि में
पर पूर्णनाथ समझो, अन्तर तुम काष्ठ अग्नि,सामान्य अग्नि में

प्रारब्ध भोग और मूलाविद्या को, तुम काष्ठ यहाँ पर मानो ।
औ वृत्ति अखण्डाकार सरिस,तुम दियासलाई बत्ती जानो ।।
आरूढ़ वृत्ति जो ज्ञान,उसे तुम समझो,उस बत्ती की आगी ।
औ पूर्णनाथ ज्ञानाग्नि कहो, जो लपट उभय मिश्रण से जागी

मिथ्या निश्चय भी कहलाती ज्ञानाग्नि यही जो भभक रही है
तत्काल भस्म कर देगी यह, जो उभय सृष्टि जग पनप रही है
अवशेष अग्नि वह बुझी हुई जो मुक्ति विदेह कही जाएगी ।
जो पूर्णनाथ जग कार्य व कारण रहित ब्रह्म,ही हो पाएगी ।

है शेष ब्रह्म ही निष्प्रपंच, अतिरिक्त नहीं है उससे कुछ भी ।
भ्रम से ही भासित होता है,जग दीख रहा जो तुझ को अब भी
सत एव इदम् आसीत अग्रे पश्चात् यही सत रह जाएगा ।
जब पूर्णनाथ भ्रम का जग तव ज्ञानाग्नि ज्वाल में दह जाएगा

जो सत है, चेतन भी वह है, सब सत है, तो बस सब चेतन है
वह सब चेतन, जो दीख रहा जड़, कहीं कहीं दीखे चेतन है
यह माया चिद्‌जड़ ग्रंथि सहज ही नहीं सभी को खुलपाती है
बस पूर्णनाथ सच्चिदानन्द सर्वत्र नहीं मति लख पाती है

यदि वृत्ति विवेक स्थूल बुद्धि की भी लेकर के चलो समझने
तब भी यह सब चेतन ही होगा,प्राप्त तुम्हें चल सन्मुख अपने
जग रोम रोम जग कण कण में, वह चेतन ही चेतन पाओगे
तुम पूर्णनाथ लेकर विवेक को, जहाँ कहीं चलते जाओगे ।

गूलर फल में बोलो कैसे, वह जग विशाल चेतन का आया ।
मानों कर पृथक सभी ब्रह्माण्डों से अपना ब्रह्माण्ड बसाया ।।
आता जब वर्षाकाल, पतंगों का अपार दल नभ को छाता ।
जो पूर्णनाथ लघु छिद्र धरा का फोड़ गगन में ऊपर जाता ।

मुख बन्द पात्र की रखी शर्करा के प्रतिकण में कृमि हो जाते
कह सकते हो क्या वे उसके भीतर किस वातायन से आते ।
वस्त्रों की गाठों में क्या तुमने देखा है जो भरे भवन में ।
है पूर्णनाथ कृमि सृष्टि बसाये महा वहाँ, वैसे ग्रन्थन में ।५२२।

गोमय पुरीष, कुछ घंटों में हीं करते, रूप जीव का धारण ।
है यह कहना अत्युक्ति नहीं, क्या कह सकते हो इसका कारण
पशु पक्षी या मानव का ही यदि मृतक देह,रख दो पृथ्वी पर
क्यों पूर्णनाथ उसमें हो जाते जीव असंख्य कहाँ से बनकर ।

गोदाम अनाजों की बाहर से रक्खी जाती है ढ़क करके ।
लख होते हो क्या चकित, जीव दानों की संख्या से बढ़करके
ज्यों प्रथम वृष्ठि के जल से लगते जलागार पृथ्वी के भरने
बस हैं पूर्णनाथ त्यों जीव निकलकर लगते,सुख जल क्रीड़ा करने

अति कठिन काठ है उसके भीतर, जीवों की दुनियाँ बसती है
जो जड़ पदार्थ उनमें किमि चेतन, क्या तव बुद्धि बता सकती है
गन्दी अलकों में वसनों में, हैं आते जीव असंख्य तुम्हारे ।
ये पूर्णनाथ जलरूप स्वेद से, होते किमि, तू तनिक विचारे ।

रहते पलाश या ढाक वृक्ष को आच्छादित कर,लाक्षा के कृमि
क्या तनिक सोच सकते हो तुम, उन सबकी उत्पति होती है किमि
चींटी चींटे खग सलभों का, समुदाय कभी तुमने देखा है ।
क्या पूर्णनाथ तव मुख पर, खिंचती अचरज की किंचित रेखा है

मधु मक्खी हड्डे वर्रे टिड्डे दल के दल जब लगते चलने ।
तब करने में अनुमान तुम्हारी, लगती है यह बुद्धि विचलने
यह तो सब है ही, सूक्ष्म दृष्टि वैज्ञानिक से तो पुछो जाकर ।
तुम पूर्णनाथ गदगद होंगे, सारा रहस्य चेतन का पाकर ।।

ये बतलाते प्रति बिन्दु कूप जल में, सहस्र कीटाणु समाये।
वैसे ही तन के रुधिर वीर्य रज में भी, घन हो करके छाये।
प्रतिश्वास वायु जो भीतर जाता, उसमें जीव सहस्रों रहते।
वे पूर्णनाथ अणु वीक्षण द्वारा, सत्य परीक्षण करके कहते॥

रवि पावक में भी व्याप्त हुए, रहते है जीव उसी विधिनाना
कैसे ज्वाला सहते है इसमें, तनिक नहीं आश्चर्य ठिकाना॥
पाँचों भूतों का कण भी एसा है न, जहाँ वे जीव नहीं हैं।
अब पूर्णनाथ तुम ही सोचो, सब चेतन, यह सिद्धान्त सही है

भूतों में हैं सब जीव, अभी होता तुमको एसा प्रतीत।
मस्तिष्क तुम्हारा सुनकर के, विपरीत अभी संभ्रान्त भीत।
इन नाना भूतों की उपाधि से, नाना जीव तुम्हें लगते हैं।
पर पूर्णनाथ उनसे तो पूछो, जो चेतन में ही जगते हैं।५३०।

इन मिथ्या माया कार्य भूत की, सब प्रतीति उनको मिट जाती
है चेतन की घन व्यापक होकर, बस अखण्ड सत्ता रह जाती
यदि देह धर्म व्यवहार काल में, वृत्ति कभी वे वाहर लाते।
हैं पूर्णनाथ तब भी भूतों को, स्वप्न सदृश चेतन में पाते।

यो वै भूमा तत्सुखम् पुरुष वह, द्वन्दों से ऊपर उठ जाए।
पश्येत् केन कं यत्र त्वस्य सर्वम् आत्मैवाभूत लखाये॥
कर्माणि चास्य क्षीयन्ते तस्मिन् दृष्टे, होता जग जल पुष्कर।
है पूर्णनाथ यो शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति वही नर।५३२।

आप्नोति ब्रह्मविद परम् आत्मवित शोकं तरति,जिसे श्रुति गाती
ब्रह्मैव भवति,कह करके है श्रुति जिस नर की महिमा बतलाती
अत्रैव समवलीयन्ते प्राणा तस्य न उत्क्रामन्ति, यहाँ से ।
तब पूर्णनाथ, पापमकरवम्, नाकरवम्, साधु विचार कहाँ से
वह ब्रह्मैवाहमस्मि कहता, ब्रह्मास्मि अहं, नित अनुभव करता
प्रज्ञान घनः नित्यः प्रज्ञानं ब्रह्म, मानकर विचरण करता ।
ब्रह्मानन्दं विज्ञानं कहता, आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् ।
पर पूर्णनाथ अज्ञानी को है, दुर्लभ ब्रह्म, विविध व्यवधानात् ।
ज्ञानी त्वात्मैव, कृष्ण कह, उसको भक्तों में ऊपर बतलाये ।
जो अय आत्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि करामलकवत कर दिखलाए
वह कहता यदयमात्मा सर्व, इदम पुरुष एवेदं विश्वम् ।
फिर पूर्णनाथ आत्मैवेदं सर्वम् फिर ब्रह्मैवेदंसर्वम् ।।५३५।।

है वह सर्व खल्विदं ब्रह्म, अभिभावित हो स्वच्छन्द विचरता
कह विज्ञानं आनन्दं ब्रह्म गगन मण्डल अनुप्राणित करता ।
नानास्ति नेह किंचन कहता फिर, सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मो ।
फिर पूर्णनाथ आनन्दो ब्रह्मो, विज्ञानं आनन्द ब्रह्मो ।५३६।

वह आतम क्रीड वह आत्मरतिः बन,पूर्ण अकिंचन वह हो जाता
पुत्रा दायम् उपयन्ति तस्य जिस सबको वह तज करके जाता
सुहृदः ले जाँय साधु कत्यम् जो होता, अभ्यासों वश केवल ।
औ पूर्णनाथ लें, पुरुष द्विषन्तः सर्व पापकृत्यम्, उसका फल ।

फिर, न स पुनरावर्तते कहे श्रुति, ज्ञानादेव तु कैवल्यम् फिर
अतिमृत्युम् एति तमेव विदित्वा,कभी न अब सकता नीचे गिर
निश्चय एतद् अक्षरं विदित्वा, अस्माल्लोकात्प्रैति ब्राह्मणः ।
जो पूर्णनाथ अविदित्वा अस्माल्लोकात्प्रैति वही है कृपणः ।
अथ भयं भवति जो उदरमन्तरं कुरुते, नाना दुर्गति होती ।
श्रुति कहे द्वितीयाद्भयं भवति वै, निश्चय उसकी मुक्ति न होती
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह पश्यति नानेव, जगत के भीतर
इह पूर्णनाथ नावेदीन्महती चेद् बिनष्टि , पाता मर कर ।
अयनाय विद्यते नान्यः पन्था त्यागेनै के अमृतमानशुः ।
अन्योऽसावन्योऽहंअस्मीति बताता है वह नर यथा पशुः ।।
शोचति अनीशया मुह्यमान हो जगत्प्रपंचों में फँस जाता
वह पूर्णनाथ प्रजया धनेन कर्मणा, मोक्ष को कभी न पाता ।

व्यापक है सर्वत्र, ब्रह्म जो सबकी आत्मा ।
करामलकवत करते साक्षात्कार महात्मा ।।
तुम कहते हो, नहीं दीखता है, वह मुझको ।
पूर्णनाथ अज्ञात देखने की विधि तुझको ।।५४१।।

द्विविध जगत में देखा जाता, होना दर्शन ।
दोनों का करते हैं अनुभव शास्त्र समर्थन ।।
दृश्य दीखते बने, ज्ञान का विषय हमारे ।
पूर्णनाथ उनको दर्शन, माने नर सारे ।।५४२।।

स्वयं प्रकाश स्वरूप ज्योति वह, जिसके द्वारा ।
होता है बहिरन्तर भासित सर्व तुम्हारा ।।
उसका अनुभव कभी नहीं तुम हो कर पाते ।
पूर्णनाथ उस ज्ञान के विषय को, मात्र बताते ।।५४३।।

नहीं, देखने वाले तक जाती मति तेरी ।
अपितु दीखने वाले की, बन जाती चेरी ।।
मन मन का जो, बुद्धि बुद्धि का साक्षी सबका ।
पूर्णनाथ विस्मृत होता, आधार जगत का ।।५४४।।

विज्ञातारं केन विजानीयात बताओ ।
यह सम्भव जब हो अभेद अनुभव कर पाओ ।।
आँख देखती सभी वस्तुओं को बाहर की ।
पूर्णनाथ निज आँख दीखती, पर किस नर की ।।५४५।।

आँख न यदि होती तो, दर्शन होते कैसे ।
यही आँख को हुआ देखना, समझो ऐसे ।
त्यों ही जिसकी ज्योति, नेत्र के पार निकसकर ।
पूर्णनाथ जग विषय करे, जो वह अभ्यन्तर ।।५४६।।

उसका होना सिद्ध हुआ, इस अनुभव बल से ।
कलनाये सारी सम्भवती, उस निष्कल से ।।
उसमें तीनों ज्ञेय ज्ञान ज्ञाता आरोपित ।
पूर्णनाथ आश्चर्य यही फिर भी वह विस्मृत ।।५४७।।

आत्म तत्त्व अपरोक्ष नहीं, अनुभव हो पाता।
आरोपण भ्रम से, कुछ दोषों का हो जाता॥
इतना दृढ़ अभ्यास उन्हीं का हो जाता है।
पूर्णनाथ निर्दोष नहीं, वह खुल पाता है॥५४८॥

प्रथम दोष है बनती है, बाधा यह दूरी।
नभ में उड़ते, ओझल होती शीघ्र मयूरी॥
नेत्र शक्ति से ज्योंही वह हो जाती बाहर।
पूर्णनाथ हम कहते दीखे नहीं गगन चर॥५४९॥

यदि शंका हो दृष्टि दूर हो जाता पक्षी।
दूर नहीं पर हो सकता है सब का साक्षी॥
तो उसमें आती यह दूरी, अन्य भाँति से।
पूर्णनाथ वह नहीं नेत्र से, हृदय आँख से॥५५०॥

रहता है वात्सल्य भरा, माता के उर में।
पुत्र वधु पर ज्योंही, आ जाती है घर में॥
वही पुत्र जब है नारी को लक्ष्य बनाता।
पूर्णनाथ है हृदय नेत्र से, विस्मृत माता॥५५१॥

ब्रह्मा त्योंही अक्ष बहिर्मुख सभी बनाये।
जिनके द्वारा अहमभिमानी बाहर धाये॥
नहीं देखता अन्तरात्मा, जो निज स्वरूप सत।
पूर्णनाथ यह जीव भटकता, नित्य विषय गत॥५५२॥

हृदय चक्षु दूराता न ब्रह्म को देखे हम ।
दृष्टि हमारो गई बाह्य जग पर ही है जम ।।
कहाँ हमें अन्तर्मुख होने का, है अवसर ।
पूर्णनाथ सकते किमि, आत्मा का अनुभव कर ।।५५३।।

यों ही दोष द्वितीय उसी का बन अभ्यासी ।
निज स्वरूप की प्राप्ति न कर सकते अविनासी ।।
वह अति सामीप्यात् नहीं जाता है जाना ।
पूर्णनाथ अति निकट वस्तु का दुर्लभ पाना ।।५५४।।

दृग अंजन अति निकट, आँख में लगा तुम्हारी ।
कर परिवर्द्धित ज्योति, उसे होता सुख कारी ।।
तदपि देखती आँख, सभी को किन्तु न अंजन ।
पूर्णनाथ अति निकट दोष से, न अलख निरंजन ।।५५५।।

विषयों में जो पड़ती, उसके सुख की छाया ।
उनमें ही सुख भ्रम, करवा देती, वह माया ।।
सारुप्यात् तृतीय दोष है, जिसके कारण ।
पूर्णनाथ अज्ञान ब्रह्म प्रति, अगम निवारण ।।५५६।।

है केवल प्रतिबिम्बित, तव आनन्द वहाँ पर ।
उसमें ही आनन्द समझता है तू भ्रम कर ।।
दर्पण का प्रति बिम्ब लिया, सारुप्य बदन का ।
पूर्णनाथ तू किया संग, दर्पण आनन का ।।५५७।।

भ्रम निवृत्ति के बाद, बिन्दु ज्यों सागर मिलता ।
पाते बिन्दु सिन्धु को, उभय सामान्य सलिलता ।।
त्योंही कर जब जीव, ऐक्य ब्रह्म से लेता ।
पूरणनाथ सारुप्य दोष को, हल कर देता ।।५५८।।

व्यवधानात् चतुर्थ दोष, जो आकर आगे ।
आवृत ब्रह्म को करता, मानो भय त्यागे ।।
दीवारादिक का होता, व्यवधान जहाँ पर ।
पूरणनाथ हैं पृष्ट भाग की वस्तु, अगोचर ।।५५९।।

है व्यवधान अविद्या जो साक्षी को घेरे ।
वह भी है निस्तत्त्व, जीव यदि मति निज फेरे ।।
उसी आवरण में द्रष्टा, हो जाता अन्धा ।
पूर्णनाथ आरम्भ जगत का, गोरख धन्धा ।।५६०।।

सर्प बुद्धि रस्सी में हो यदि तनिक अँधेरा ।
हो जाती, भ्रम करता देह प्रकम्पित तेरा ।।
भ्रम निवृत्ति पर्यन्त, न तुम रस्सी लख पाते ।
पूर्णनाथ अहि सोच सोच कर, तुम घबराते ।।५६१।।

पंचम दोष भ्रमात्, न तू ब्रह्म को जाने ।
जगदीश्वर में, जगत बुद्धि करके तू माने ।।
यही हेतु जिससे स्वरूप तव जो जगदीश्वर ।
पूर्णनाथ अज्ञात तुम्हें है, यह जग बनकर ।।५६२।।

रहते हैं जीवाणु गगन मण्डल में उड़ते ।
इसी चक्षु से हैं वे क्या, तुमको लख पड़ते ॥
तुम न देख सकते हो, उनको आँखों अपने ।
पूरणनाथ वे सूक्ष्म सभी होते हैं इनके ॥५६३॥

वैसे ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म, है रूप तुम्हारा ।
षष्टम् इस सौक्ष्म्यात् दोष का, होकर मारा ॥
ब्रह्म को अपरोक्षतया, तुम देख न पाते ।
पूरणनाथ निज दुर्बलता, साक्षी पर लाते ॥५६४॥

है अदृष्ट तव अन्तःकरण समाये जैसे ।
किन्तु उन्हें तुम कभी देख, सकते हो कैसे ॥
हाँ फल देने को जब, वे सन्मुख आते हैं ।
पूर्णनाथ अनुमान तभी, सब कर पाते हैं ॥५६५॥

वह प्राकट्य अयोग्य यही है सप्तम कारण ।
ब्रह्म को तुम प्रगट रूप से, करो न धारण ॥
नहीं ज्ञान का विषय, तुम्हारी मति के होता ।
पूर्णनाथ प्रत्यक्ष न कर सकता, तब रोता ॥५६६॥

विविध हेतु इसमें ऐसे ही पाये जाते ।
जिस कारण निज ब्रह्म को तुम देख न पाते ॥
मन निर्मलता से, दुर्गुण जब मिट जाएँगे ।
पूर्णनाथ ब्रह्म के दर्शन तुझे हो पायेंगे ॥५६७॥

सभी महात्माओं ने देखा था ऐसे ही ।
तू भी देखेगा निर्मल मन हो, जैसे ही ॥
पुनः देखने की विधि इसकी तुम्हें बताता ।
पूर्णनाथ यह दर्शक की ज्यों, देखा जाता ॥५६८॥

महाभूत सबको प्रतीति होती है जिनकी ।
सत्ता जीवन मुक्त दृष्टि में कैसी उनकी ॥
सर्प रज्जु में यथा भ्रान्ति के विषय भूत हैं ।
पूर्णनाथ सत रज्जु जानते, यों अवधूत हैं ॥५६९॥

अक्ष ज्ञान पर, बुद्धि ज्ञान का करता शासन ।
वह उत्तम जिज्ञासु लखे, जग सपना कानन ॥
क्रम को भी भ्रम रूप, वही जिज्ञासु समझाता ।
पूर्णनाथ उस पर, प्रभाव किमि जग कर सकता ॥५७०॥

चत्वारिंशति वर्ष मातु, सुत पंच वर्ष का ।
क्रमशः अन्तर प्रगट दीखता रूप शब्द का ॥
सपने में, पर भ्रम कहता जगने वाला ।
पूर्णनाथ त्यों जग, मुमुक्षु निर्मल मन वाला ॥५७१॥

वह मध्यम जिज्ञासु, बुद्धि में है निर्मलता ।
पर उसमें मिश्रित है, सद्व्यवहार कुशलता ॥
उसके कल्याणार्थ बताती, श्रुति क्रम सारा ।
पूर्णनाथ जो समझे, कुछ संकेतों द्वारा ॥५७२॥

वही अधम जिज्ञासु, विचारों का जो नास्तिक ।
है उसका मस्तिष्क ज्ञान का, रजो तामसिक ।।
ग्रंथों से पाश्चात्य, प्रभावित है जो रहता ।
पूर्णनाथ वह अति वितर्क मय शंका करता ।।५७३।।

पुनर्जन्म परलोक जीव, ईश्वर नहिं माने ।
कह बादी प्रत्यक्ष, जिसे विद्वान बखाने ।।
वह कहता जब चार भूत मिल जायें परस्पर ।
पूर्णनाथ बस देते हैं, चैतन्य प्रकट कर ।।५७४।।

पुनः बिखर कर भूत, पूर्ववत हो जाते हैं ।
निज स्वभाव जड़ता को ही, फिर वे पाते हैं ।।
प्रगट लोक अतिरिक्त पाप पुण्यादि सभी को ।
पूर्णनाथ कहता है मिथ्या, सत्य अभी को ।।५७५।।

प्रश्न करो उससे, वह अपना अनुभव कहता ।
मन गढ़न्त या निरी कल्पना, केवल करता ।।
कथन काल्पनिक है तो, उसका मूल्य नहीं है ।
पूर्णनाथ क्या हुई, कल्पना सत्य कहीं है ।।५७६।।

यदि कहता अनुभव तो, उससे पुनः प्रश्न कर ।
किनने देखा जड़ होजाते जीव बिखरकर ।।
जड़ में है वह शक्ति नहीं, जिससे कुछ जाने ।
पूर्णनाथ चेतन को तो, वह कभी न माने ।।५७६।।

निरी मूर्खता, अधिष्ठान, सबका जड़ बातना । बताना
हाँ ! नास्तिक को कठिन, ईश का अनुभव कराना ।।
मरकर है जो जीव, देव प्रेतादिक होते ।
पूर्णनाथ देह आग्नीय, वायवी उनके होते ।।५७८।।

प्रगट बोलते है वे जाकर पार्थिव तन में ।
नहीं देखता वह तो, सोचे अपने मन में ।।
वायु प्रधान देह प्रेतादिक, के हैं रहते ।
पूर्णनाथ बस चर्म चक्षु, ये देख न सकते ।।५७९।।

विविध वस्तुये ऐसी, जग में पाई जाती ।
जिस तक नर की दृष्टि कभी है पहुँच न पाती ।।
सभी मानते है फिर भी उनको ऐ नास्तिक ।
पूर्णनाथ तव बुद्धि दूषित सिद्धान्त वास्तविक ।।५८०।।

यदि होती हैं तुझे देखने की अभिलाषा ।
पूछो जीवन मुक्तों से, उसकी परिभाषा ।।
उनके जैसा अपना, अन्तःकरण बनाओ ।
पूर्णनाथ तब इस पथ के, हित चरण उठाओ ।।५८१।।

लय क्रम है जो इसी ग्रंथ में पहले वर्णित ।
हित मुमुक्षु के मध्यम, जिसका उर क्रम अंकित ।।
क्रम का किंचित भेद, उसे अब यहाँ बताना । क्रम
पूर्णनाथ पाश्चात्य संस्कृति, में जो साना ।।५८२।।

शंका यदि वह करे, पूर्णतः पृथ्वी जल में ।
है किमि होत विलीन, कठिन यह घनता थल में ।।
जीव शक्ति से जल हो सकती है बढ़िया से ।
पूर्ण नाथ जो घनता, आती जीव क्रिया से ।।५८३।।

नमक बर्फ मिश्री का. जल में परिणत होना ।
सम्भव है पर लोहा प्रस्तर चाँदी सोना ।।
घन होते परमाणु, धरा के या जो ऐसे ।
पूर्णनाथ वे जल हो सकते बोलो कैसे ।।५८४।।

हो भी क्षण को जाये, पुनः धन ही हो जाते ।
वारि रूप में जीव नहीं, उनको ला पाते ।।
ईश्वर सत संकल्प रचित जो उसके द्वारा ।
पूर्ण नाथ क्या कार्य, करे बल वहाँ तुम्हारा ।।५८५।।

चार भूत परमाणु नित्य, हैं ईश्वर विरचित ।
जीव नहीं कर सकता, है उनको परिवर्तित ।।
एक विशेष पदार्थ जिसे, कहते नैयायिक ।
पूर्ण नाथ रखता अणुओं को सभी विभाजित ।।५८६।।

पुन. जगत को, फुरण शक्ति से रचता ईश्वर ।
किमि सकते तुम क्रिया शक्ति से परिवर्तित कर ।।
फुरण शक्ति भी नहीं, करेगी कार्य तुम्हारी ।
पूर्ण नाथ सोचो मलीनता, कितनी भारी ।।५८७।।

फुरण शक्ति हित ऊपर, बहु दृष्टान्त बताये ।
क्रमशः अन्तर भी, फुरनों का हम समझाये ।।
करे अधम जिज्ञासु नहीं हठ अब निज मति का ।
पूर्णनाथ ले आश्रय अब, उस माया पति का ।।५८८।।

जग फुरने से विरचित, मिथ्या इस कारण से ।
किन्तु नहीं यह कह, सकते जन साधारण से ।।
करले वह विश्वास, शरण ईश्वर की जाए ।
पूर्णनाथ कुछ दिन में, सम्भवतः लख पाए ।।५८९

अस्तु हे वादी जगत को, मानकर पूरा सही ।
थी यहाँ अब तक तुम्हारी, यह सभी शंका रही ।।
सत्यपन जब तक नहीं, मस्तिष्क से तव जायगा ।
नाथपूरण तू समझ वेदान्त को क्या पायगा ।।५९०।।

स्वप्न मन, जादू सिनेमा, भ्रम जिन्हें तू देखता । स्वप्न
फिर बताओं इस विषय में, क्यों न शंका मूर्खता ।।
त्यों असम्भव किम् कथम्, के प्रश्न मायावाद में ।
नाथपूरण लाभ क्या होगा, वितण्डा वाद में ।।५९१।।

हैं नहीं दृष्टान्त, माया मात्र ही दृष्टान्त है ।
यह अलौकिक रूप माया का अजब सिद्धान्त है ।।
तदपि हम दृष्टान्त भी, तुझको दिखाये हैं कई ।
नाथपूरण दिव्य यह माया, दुरत्यय गुणमयी ।५९२।।

यह अनिर्वचनीय है, तू पार लेना चाहता ।
बुद्धि होगी पार लेने में, तुम्हारी लापता ।।
आत्म निष्ठा में पहुँच, जिस दिन तुम्हारी हो गई ।
नाथपूरण जान लो माया उसी दिन खो गई ।।५९३।।

घोर दुख की बात है, आश्चर्य होता है मुझे ।
जग नहीं मिथ्या तमाशा, लग रहा अब तक तुझे ।।
पूर्व जीवन स्वप्न वत, तू देखता प्रत्यक्ष है ।
नाथपूरण जगत कैसे सत्य, आज समक्ष है ।।५९४।।

दृष्टि हटती है नहीं तव, दौड़ता ममता लिये ।
लो कथन अब मान मेरा, त्याग निज मति का किये ।
है यही कहना सनातन, सन्तजन समुदाय का ।
नाथपूरण प्रभु शरण जा, वश न अन्य उपाय का ।।५९५।।

भक्ति अव्यभिचारिणी से, जो भजे भगवान को ।
अतिक्रमण गुण का किये, वह दिव्य पाता ज्ञान को ।।
जो शरण प्रभु के गया, तज कपट पूरे भाव से ।
नाथपूरण शोक तरता, प्रभु कृपा की नाव से ।।५९६।।

प्रीति से भजते सतत, जो युक्त हो प्रभु को सदा ।
योग दें प्रभु बुद्धि का, प्रभु प्राप्त कर ले वे तदा ।।
बुद्धि में आरूढ़ प्रभु, अज्ञान तम उनका हरे ।
नाथपूरण ज्ञान दीपक से, कृपा उनपर करें ।।५९७।।

चक्षु से निज देखना प्रभु को, असम्भव है तुम्हें ।
चक्षु देंगे दिव्य तब तुम, देख सकते हो उन्हें ।।
शास्त्र का कर ज्ञान, तप कर, यज्ञ कर, बहुदान कर ।
नाथपूरण प्राप्त तू सकता नहीं भगवान को कर ।।५९८।।

भक्ति होवे यदि अनन्या, जान सकते हो उन्हें ।
देखकर प्रत्यक्ष तुम पहचान सकते हो उन्हें ।।
तत्त्वतः तुम एकता की, प्राप्ति उनसे कर सको ।
नाथपूरण जीव का खो भाव, प्रभु ही हो सको ।।५९९।।

तत्त्वतः नर जानते, प्रभु है यथा जो, भक्ति से ।
प्राप्त करते प्रभु सुरत उस ज्ञान की ही शक्ति से ।।
भक्त हो, प्रभु मन लगा, प्रभु पूज, प्रभुहिं प्रणाम कर ।
नाथपूरण प्रण उन्हीं का, सत्य लेगा प्राप्त कर ।।६००।।

धर्म सारे त्याग कर, प्रभु शरण का आधार लो ।
देव दुर्लभ देह में, कर आत्म का उद्धार लो ।।
मुक्त पापों से करेंगे, कोटि जन्मों में किए ।
नाथपूरण शोक भक्तों का सभी, प्रभु हर लिये ।।६०१।।

यह नहीं सिद्धान्त लौकिक तर्क भी इसमें नहीं ।
पुण्य अर्जित बुद्धि में प्रभु प्रीति से खिलती कहीं ।।
उच्च वस्तुस्थिति यही, अनुभूति संतों की यही ।
नाथपूरण कह रही गीता, पुनः श्रुति भी कह रही ।।६०२।।

बुद्धिवादों से परे यह, संत वस्तुस्थिति कहें ।
प्राप्त इसको जो करे, सुख तृप्ति का, वे ही लहें ॥
दृश्य जग होता विलय, होता विलय द्रष्टा पना ।
नाथपूरण स्वयम् रहता, शेष मैं मै तू बिना ॥६०३॥

बुद्धि के चातुर्य से विश्वासको, यदि खो गया ।
इस अमोलक वस्तु से, यदि बन्धु वंचित हो गया ॥
जान लो महती विनष्टि. क्या दिया धन धाम ने ।
नाथपूरण नाश होले देखते, निज सामने ॥६०४॥

दृश्य जग मिथ्या सभी, जो नाम रूप असार है ।
किन्तु जिस आश्रय टिका है सत्य वह आधार है ॥
ब्रह्म वह परिपूर्ण है घन व्याप्त होकर छा रहा ।
नाथपूरण है जगत सत्ता उसी से पा रहा ॥६०५॥

देश काल वस्तु से परे, जो ब्रह्म सच्चिदानन्द ।
निर्गुण निराकार, ब्रह्म घन व्यापक परमानन्द ॥
कार्य सहित कल्पित माया के, अधिष्ठान चैतन्य ।
पूर्णनाथ उनको प्रणाम है, निष्ठा सहित अनन्य ॥६०६॥

प्रतिकूल वायु ओले पाले से है, विनष्ट होती खेती ।
त्यों इतर वृत्तियाँ वृत्ति ज्ञान का भी, विनाश हैं कर देती ॥
नारी नीरद यौवन पावस नैनों की दामिनि दमकरही ।
पर पूर्णनाथ गिरने वाली जो, कमल वेलि तव लहक रही ।

बरसेंगे ओले काम वृत्ति के, बोध कमल दलने वाले ।
यह वृष्टि दृश्य,उनका बैरी,जो साधन पथ चलने वाले ।।
हैं त्रिविध नर्क के द्वार, नाश कर देते है जो आत्मा का ।
हो पूर्णनाथ बस सावधान,सच्चा इच्छुक परमात्मा का ।।६०८।।

य शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।।
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।६०९।।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यतेनाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।।
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।।६१०।।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यते मामबुद्धयः ।
परं भावंमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ।।
नाहं प्रकाश सर्वस्य योगमायासमावृत ।
मूढ़ोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।।६११।।

ॐ तत्सादुपनिषत्सु ब्रह्मविद्याया योगशास्त्रे
"स्वरूपस्थिति" नामक ग्रथ समाप्त ।।

ॐ

श्री गुरुशरणात्मने नमः

शरणागति–महिमा

मंगलाचरण

विघ्न हरण मंगल के दाता, शंकर सुवन गणेश ।
नर मुनि अमर उपासित, पूजित ब्रह्मा विष्णु महेश ।।
सबका हित सामान्य रूप से करते जो निष्काम ।
करे ग्रहण वे कृपा सहित, पूरण का नम्र प्रणाम ।।१।।

आसीना सित कमल, धवल वस्त्राभूषण, कर वीन ।
अद्वितीय अपनी विभूति में, सुषमा नित्य नवीन ।।
धारण करतीं बुद्धि रूप से, जड़ चेतन संसार ।
हो वाणी में व्यक्त करें पूरण प्रणाम स्वीकार ।।२।।

जगत त्याग विष पान किये, जो सहज विरागी रूप ।
निर्विकल्प जो लीन ध्यान, मुख मुद्रा अकथ अनूप ।।
आशुतोष जो भक्तों का, करते पूरण मन काम ।
ले प्रसन्न वे शिव पूरण का, श्रद्धा सहित प्रणाम् ।।३।।

वेद विहित मर्यादा के, पालन कर्त्ता अवतार ।
दैवी सम्पति रक्षक, आसुरि करनहार संहार ।।
जिनकी महिमा में जग सारा व्यक्त कल्पना मात्र ।
ले प्रणाम रघुवर पूरण को, करे कृपा का पात्र ।।४।।

भ्रम ब्रह्मा पर्यन्त सभी का, लीलायें दी मेट ।
ज्ञान रूप, शुचि घट में, लेते इन्द्रिय वृन्द समेट ।।
शास्त्र समन्वय रोम रोम से, होता है अभिव्यक्त ।
ले प्रणाम हरि पूरण का, जो कमल चरण अनुरक्त ।।५।।

है अनन्त ब्रह्माण्ड कोटि, प्रति रोम लगे जिनके तन में ।
टिका हुआ जग जिन पर चाहें, ध्वंस करे जिस भी छन में ।।
ज्ञानेच्छा कृति जीवों का जो, है नियमन करने वाले ।
पूर्णनाथ उनको प्रणाम जो, विश्व रूप धरने वाले ।।६।।

चिद्घन चिन्मय चित्स्वरूप, अक्षर अव्यय अविनाशी ।
परप्रेमास्पद घनानन्द जो, सुख सन्तोष प्रकाशी ।।
मीन वारि इव जिन पर जीती, है ब्रज की ललनायें ।
पूर्णनाथ गोविन्द मुझे लेकर प्रणाम अपनायें ।।७।।

अरुणाभ कमल दल शोभा, जिनके नयनाम्बुज हरते ।
जिनके बनमाल बनज से, उज्जवल मुक्ताजल ढरते ।।
प्रस्फुटित नाल नीरज का निकला है नाभि उदर से ।
ले पूर्णनाथ कमलापति, प्रणिधान अतुल आदर से ।।८।।

घूँघर लटकेश मुकुट पर, जिनके लहराते शिखिनों के पर ।
योगी जन मन रमता जिनमें, प्रज्ञा कुण्ठित होती सत्वर ।।
लक्ष्मी मन मानसरोवर में, बन पारावत करते क्रीड़ा ।
प्रणमामि कृष्ण ब्रजचन्द हरें वे पूर्णनाथ तन मन पीड़ा ।

कंस से भट का किऐ, कुल सहित जो संहार ।
केशि चाणूरादि के बध का न पारावार ।
शुद्ध सत्व प्रधान माया व्याज से शिव इष्ट ।
नाथपूरण पार्थ सारथि, प्रश्न जो अति क्लिष्ट ॥१०॥

गोचारण जिनकी बजी मुरलिया, जड़ चेतन सबही सुधि खोये
गोपाल श्याम जो अहि वासुकि का मर्दन कर अभिमान बिलोये
नीर यमुना कछार शशि युत राका में नित करते जो लीला
प्रभु पूर्णनाथ के जिनको कुण्डल हिल हिल करते और छबीला

गोपिका नीरज नयन प्रतिबिम्ब जो माला बनाये ।
दिव्य नर्तन रास करते सहस फण को जो नचाये ॥
कोपि शरणागत न कुत्र कदापि, माया ग्रास होता । स्रोता
नाश पूरण कृष्ण पद कर आस, जग को त्रास खोता ॥१२॥

अघ प्रणाशन हेतु ही, प्राकट्य है जिनका सदा ।
गिरि उठाये व्रज बचाये, शक्र थे कोपित यदा ॥
प्राण कर्ष पूतना थन पान मिस शुभ गति दिये ।
नाथपूरण मार तृणआवर्त्त व्रज भयगत किये ॥१३॥

जो षड विकारों से रहित जो विगत माया मोह ।
खल अरि निरंजन रूप कर जन प्रीति विमुख विमोह ॥
जिस कृष्ण से बढ़कर न, कोई तत्त्व जगत प्रतीत ।
है नाथ पूरण महत प्रभु के चरण भाल विनीत ॥१४॥

आनन्द परम सुर भूत चरम, हरि हो प्रसन्न वर दीजै ।
हो विषय विरति, सुख प्रति नहिं गति,मम बीज कर्म हर लीजै
इन्द्रिय अहि मन कहँ कर्मज तन, कँह डसत गरल कृत पीरा
अब नहिं दमनीया नहिं, सहनीया पूर्णनाथ भव भीरा ॥१५॥

विराजमान लक्ष्मी उपेत मंच सोहते ।
वियोग योग में उभय व्रजांगन विमोहते ॥
जगत प्रकाश ज्योति दिव्य, आपनी दिखाइये ।
अपार सिन्धु पूर्णनाथ डूबते बचाइये ॥१६॥

जो केशव निज भक्तों का, सब क्लेश शीघ्र ही हर लेते हैं ।
जो नारायण बने जनों की, संसृति ही गत कर देते है ।
व्यापक परमानन्द कृष्ण जिनका मुझको सब भाँति सहारा ।
पूर्णनाथ दुख दूर करे देकर अपना आनन्द किनारा ॥१७॥

हे कृष्ण ! जन कल्याण हित, महिमा शरण की लिख रहा
नर नारि विषयासक्त के हित, पथ न कोई दिख रहा ।
जो पढ़ इसे चढ़ जाय प्रभु, तेरी शरण की नाव पर ।
गोपाल पूरणनाथ को देना जलधि जग पार कर ॥१८॥

नवेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥१९॥

ॐ शान्तिः शान्ति शान्ति

शरणागति-महिमा

चिद् ब्रह्म माया बीच कल्पित जीव की गति भ्रान्ति से
अज्ञान वश निज मान सुख दुख, व्यथित प्रकृति अशान्ति से
सम्पन्न यदि साधन चतुष्टय, मुक्ति की हो कामना
सम्भव न पूरणनाथ, बिनु हरि शरण, माया सामना ॥१॥

यद्यपि मृषा ही तत्त्वतः, पर सत्य भी अज्ञान में
असमर्थ प्रभु आधार बिन, सबला चिदात्म पिधान में
अघटित घटावन हारिणी, दुश्चिन्त्य रचनाकारिणी
सदसत विलक्षण नाथ पूरण, बिनु शरण अनिवारिणी॥२॥

अनुवृत्ति काल अनादि से, प्रलयादि की है चलरही
अल्पज्ञ जीवन्ह चाकरी, यव व्रीहि माया दल रही
बहु जन्म अर्जित पुण्य बल, कहुँ एक कोटिन में यदा
करते मनोरथ मोक्ष, पूरणनाथ यह छलती तदा ॥३॥

आकाश से भू तक सभी ये भूत, माया कार्य है
औ पंच भूतों से बने ये देह, जड़ समुदाय है
घन ब्रह्म सब ब्रह्माण्ड में, आधार होकर व्याप्त है
पर जीव पूरणनाथ पंजर देह, दुख को प्राप्त है ॥४॥

जाग्रत सुषुप्ति च स्वप्न में पंचेन्द्रियों के द्वार से
अज्ञानकृतहंकार से, मनकृत सकल व्यवहार से
करता जहाँ भी जीव अनुभव, रिक्त माया से नहीं
आबद्ध सुख दुख द्वन्द्व, पूरणनाथ है होता तहीं ।। ५ ।।

हो जीव व्याकुल जब कभी, कर मुक्ति की शुभकामना
आरूढ़ होता साधनों पर, प्रकृति करती वंचना
अल्पज्ञता से साधनों में, प्रकटता अभिमान भी
विध्वंस करती प्रकृति, पूरण जिज्ञासा को छलकर तभी।।६।।

है अवधि केवल आयु की, भीषण महा संग्राम जो
फिर भी अनेकों व्याधियाँ, प्रारब्ध का परिणाम जो
पुरुषार्थ की दुश्मन स्वरूपा. है जरा भी आरही
आये न आये नाथपूरण, स्वांस जो है खाली जा रही ।।७।।

ले शास्त्र गुरु की युक्तियाँ, सत असत का निर्णय करे
षट चक्र का भेदन करे, जप नाम निधि संचय करे
कर्त्तृत्व के अभिमान में, खिलता न साधन एक भी
दलती तुहिन बन प्रकृति, पूरणनाथ जो खिलता कभी ।।८।।

है ईशकृत बाहर जगत, है ईश कृत ही वृत्तियाँ
है जीव, ईश्वर अंश औ कृत ईश सारी त्रिपुटियाँ
संघात का अभिमान कर, कर्त्ता बना भोक्ता बना
निज भूल से ही नाथ पूरण, जीव चौरासी सना ।। ६ ।।

अभिमान से ही बद्ध हो, आवागमन में डोलता
अभिमुख बने भी मोक्ष के, अभिमान ही विष घोलता
उद्भूत ज्योंही साधनों में, जीव की हंता हुई
सारी कमाई नाश पूरण, प्रकृति अनुगन्ता हुई ॥ १० ॥

जब आप ही है शत्रु अपना, फिर भलाई है कहाँ
मिलता नही जग में सहायक, दृष्टि तक जाती जहाँ
जो प्रकृति से विचलित न हो, वह शक्ति साधन में नहीं
फिर नाथ पूरण प्रभु शरण बिन, है नहीं रक्षा कहीं ॥११॥

है त्याग सकना दैव फल सुख सरल इच्छा से निजी
दुःख दैव फल को सहन करना, शक्ति से बाहर अभी
पर शीश पर हो हाथ प्रभु का, हो हृदय में शूरता
अतिशीघ्र पूरण सकृपा साधन से मिले अनुकूलता ॥ १२॥

मन बुद्धि वाणी की अगोचर, सामने माया खड़ी
बहु शूर खाये मार इसकी, प्रकृति ज्यों की त्यों पड़ी
यह शूरता से शूर है औ, बलवती बल से अतः
अब नाथ पूरण, अन्ततः शरणागत शरणागतः ॥ १३ ॥

सुख भोग का परित्याग है, फिर भी शरण भगवान की
प्रारब्ध को ललकार है, फिर भी शरण भगवान की
है टेक साधन पर सभी, फिर भी शरण भगवान की
अब नाथ पूरण हर क्रिया में, है शरण भगवान की ॥१४॥

इस जीव नन्हें में कहाँ वह शक्ति, जो कल्याण दे
यदि जीव की करुणा दशा पर, प्रभु कृपालु न ध्यान दे
इसका निजीगुण विषय में, रमणीयता लख दौड़ना
पर नाथपूरण प्रभु कृपा, परमार्थ के प्रति मोड़ना ॥१५॥

है जीव को ही बन्ध जग औ, जीव को ही मोख है
कल्याण की चिन्ता नहीं, यह जीव का ही दोष है
यह दोष होता प्रगट जब, होती कृपा रघुनाथ की
तब नाथपूरण शीघ्र ही हटती, यवनिका आँख की ॥१६॥

है जीव की हर क्षण क्रिया, सर्वेश प्रभु के हाथ में
अच्छा बुरा जो भी करे, फल जीव के पर साथ में
होकर विमुख भगवान से, यदि सैकड़ों साधन किया
अल्पज्ञता से नाथपूरण, दर्पकर सब ही खो दिया ॥ १७ ॥

यदि जगत में जगदीश दर्शन, दुख विषय में, दोषता
मिथ्यात्व निश्चय दृश्य में, ब्रह्मात्म की यदि एकता
परित्याग है पर शरण का, तो भ्रम अविद्या आवरण
बस नाथपूरण प्रभुशरण अब प्रभुशरण अब प्रभु शरण

माया कटक से हो पराजित 'जीव', यह निंदा नहीं
होता घृणित वह जीव, जिसको पतन की भी चिंता नहीं
नित अग्रसर होकर बढ़े, प्रभु शरण का आधार ले
च्युत नाथ पूरण भी शरण में भूल देख सुधार ले ॥ १६ ॥

दृढ़ व्रत, बढ़े फिर भी पतन हो, जाने शरण विपरीत है
निज वासना से ज्ञातता में, पतन पाप प्रतीत है
होगी जलन यदि मन विरुद्ध फिसल गये पथ से चरण
इच्छा सहित यदि नाथपूरण,कष्ट क्या क्या व्रत शरण।२०।।

अति पतित को भी ग्रहण करना, मात्र शरण रहस्य है
अन्तर निवेदन सत्य हो यदि, ईश निश्चय वश्य है
सौ बार गिरना लक्ष्य से, बनती शरण बाधा नहीं
यदि नाथ पूरण, निष्कपटता जीव की जावे नहीं ।। २१ ।।

निश्छल निवेदन से सहस्रों दोष गुण हों जायँगे
दिन शीघ्र ऐसे आयँगे, जब प्रभु तुझे अपनायेंगे
धुल कर हृदय की कालिमा निर्मूल जब हो जायगी
शुभ प्रेमरंजित ज्योति पूरणनाथ, उर में छायगी ।।२२।।

लावण्यता की खान का, होगा नमूना क्या इतर
वीभत्स तन में ज्योति उसकी है रही कैसी निखर
अति तुच्छ से भी तुच्छ, उस चैतन्य के संयोग से
जड़ प्रकृति पूरणनाथ, वैभव युक्त नाना भोग से ।।२३।।

रज वीर्य में क्या शक्ति है, जो गर्भ की लीला करे
सर्वांगयुत काया करे, मन बुद्धि वाणी से परे
ऐसी कलाये अति अलौकिक, अनगिनत हैं ईश की
मति नाथ पूरण लघुकला भी, देख के जाती थकी ।।२४।।

प्रभुधन्य लीलाधन्य, योगमाया धन्य सहचरी
गुण रूप सारे धन्य, उनकी धन्य सब कारीगरी
तजि आश निज, विश्वास करिप्रभु जो न शरणागत हुआ
वह नाथपूरण चोट खाकर प्रकृति की निश्चय मुआ ।।२५।।

विश्वास प्रभु में है न जिसको, शत्रु ज्यों तत्क्षण तजो
अत्यन्त भावोन्माद में प्रभु को, अहर्निश ही भजो
वह रूप का भी रूप है, सब रूप उसमें ही जगे
अनुमान भी उसकी कला का, नाथपूरण क्या लगे ।।२६।।

शोभा शरण भय भीत को, शोभा दुखी को दीन को
असहाय और अनाथ को, शोभा शरण बलहीन को
जो शक्ति से भरपूर है, बलवीर्य मद से चूर है
फिर क्या करेगा नाथपूरण,शरण से वह अति दूर है ।।२७।।

भयभीत होकर प्रकृति से, प्रभु की शरण आया हुआ
कैसे करे साहस विषय हित, विषधरी का खाया हुआ
यह है परीक्षा शरणग्राही विमुख कपटी की खरी
जलता विरह में या न पूरणनाथ, आग भंयकरी ।।२८।।

मृगभीत ज्यों जग से भगे, विष विषय से हो काँपता
दुर्गन्ध भोगों से विकल, सुख बुद्धि जिसकी लापता
अधिकार उसको है शरण का, वह शरण के योग्य है
उसको भला क्या नाथ पूरण, इष्ट जिसको भोग्य है ।।२९।।

सुख बुद्धि शरणागत बने, बस मात्र मिथ्याचार से
विचलित विरक्त यहाँ अगर बस पूर्व दृढ संस्कार से
सुख बुद्धि युत भय भी नहीं, उसको शरण से काम क्या
यदि नाथपूरण सुख जगत में, क्या शरण औ राम क्या।३०।

भव भोग से वैराग हो, प्रभु शरण में अनुराग हो
दृढ़ नेम से हो युक्त, वश में बुद्धि के मन बाग हो
प्रारब्ध प्रेरित विघ्न जो एकाध उसके आयँगे
कुछ ही समय में नाथपूरण, क्षीण हो मिट जायँगे ॥३१॥

जग से घुमाकर दृष्टि प्रभु आधार में तन्मय करो
जिस भाँति भी सम्भव बने, तन अछत निःश्रेयस करो
उपचार से नाते अनेकों, ईश में कल्पित हुए
यदि आचरण हो एक पर भी, नाथपूरण सब हुए ॥३२॥

आकार जो है भावना का, है वही भगवान का
उसको नहीं है फेर, निज सन्मान का अपमान का
जैसे बने अतिशीघ्र यदि, उसकी शरण अपना सको
निर्विघ्न पूरणनाथ, जड़ से जन्म मृत्यु मिटा सको ॥३३॥

किस रुप की माया तुझे घेरे हुए, पर देख लो
उस रूप का सम्बन्ध, प्रभु से जोड़, वैसा भेख लो
गुरु मातु पितु स्वामी सखा, जिसकी जरूरत हो तुम्हें
नहिं देर पूरणनाथ, धरते रुप है सोई उन्हें ॥३४॥

है मुख्यतः फिर भी विभाजित, प्रभुशरण की कोटियाँ
जिनसे सुलभ है लाँघना उत्तुंग मायाँ चोटियाँ
आरत मुमुक्षु अर्थार्थी मुक्तजीवन समस्या भेद से
श्रेणी शरण चव नाथपूरण, है प्रामाणित वेद से ॥३५॥

साकल्यता से दुख स्वरुपी जगत के सुख जानकर
सद्ग्रन्थ अनुसंधान कर, गुरु शास्त्र आज्ञा मानकर
तज तो दिया जिसने इसे पर, शक्ति असमर्थ है
सर्वत्र स्वरक्षा में वह अर्थार्थी वा पूरणआर्त्त है ॥ ३६ ॥

जग में प्रवृत्त कदापि हो सकता नहीं निज भूल से
जन्मान्तरों की वासना पर मिट न सकती मूल से
अति करुणक्रन्दन में बिताता विरह के दिन रात है
कामादि गति लख विकल पूरणनाथ कम्पित गात है।३७।

हे नाथ हे दारिद हरन दायक सरन अब क्या करुँ
अति दीन हीन मलीन खीन अधीन जीऊँ या मरुँ
गृह त्याग जाऊँ या रहूँ इस सन्धि में दुख झेलता
औ काल पूरणनाथ सिर पर ताल दे दे खेलता ॥३८॥

सोता कभी उठ बैठता सहसा कभी कुछ बोलता
निश्चल खड़ा होता कभी, अनमन कभी हो डोलता
बनता दुखद वातावरण अति आर्त्त करुण पुकार से
उसके हृदय के नाथपूरण, तीव्र हाहाकार से ।'३९॥

मेरी सुनेगा कौन है प्रभू तू विसारे यदि मुझे
जव शेष होंगे प्राण, कैसे दुख सुनाऊँगा तुझे
जो आह मन की जल रही, मन में विलय हो जायगी
दारुण कहानी नाथपूरण एक दिन बन जायगी ।।४०।।

होगा कलंकित यश तुम्हारा, पूर्ण हो जो छारहा
लघु कीट मेरा क्या हुआ, जो देह तजने जा रहा
भयभीत होंगे त्याग के राहीं, सभी यह याद कर
तू जो न पूरणनाथ देगा, ध्यान विधि अपवाद कर ।।४१।।

सव दोष मुझमें है, सही फिर भी तुम्हारा हूँ प्रभो
देखा नहीं मैंने तुझे, फिर भी तुम्हारा हूँ प्रभो
मुझसे निवार्य न दुःख ये, फिर भी तुम्हारा हूँ प्रभो
नहि सह्य पूरणनाथ ये, फिर भी तुम्हारा हूँ प्रभो ।।४२।।

यह तो अवस्था आर्त्त की अति वेदना से है भरी
जो ग्रहण करता प्रभु शरण लख जगत की विषबल्लरी
गज द्रौपदी नरसी प्रभृति भक्त दो कक्षा के इसी
प्रभु को बुलाये नाथपूरण थे दशा में ये जिसी ।।४३।।

उत्कृष्ट है जो आर्त्त से, सम्पन्न साधन चार से
कामादि से डिगता नहीं, डिगता न जगत असार से
है शक्ति उसकी भूमि कर्म अकाम के भीतर खिली
उस शक्ति को भी नाथ पूरण, गति उपासन से मिली ।।४४।।

समता हटाकर जगत से, प्रभु चरण माँहिं लगा दिया
दृढ़ हो गया प्रण पर उसे, निज एक लक्ष्य बना लिया
विश्वास श्रद्धा से भरा है उर छलकता प्रेम से
जिज्ञासु पूरणनाथ है, वह युक्त निज व्रत नेम से ॥ ४५ ॥

निर्भीक स्वर में है, निकलती प्रेम वाणी माधुरी
निज इष्ट से अधिकार की है, बात लेकर चातुरी
यह माँग उसकी है नहीं, दावा खुला प्रभु के सामने
है युक्तियाँ वह नाथपूरण हो विवश पर तुमको मानने॥४६॥

प्रत्यूह प्रबल समूह देत, दुरूह दुख फिर भी न जो
कम्पायमान मनाक भी, रटता अपितु शंकर भजो
प्रभु की शरण प्रभु का भजन, जग त्याग बल वैराग का
निश्चिन्त पूरणनाथ नाया कोड़ से रिपु राग का ॥ ४७ ॥

है गौरव निज त्याग का, अवलम्ब प्रभु का ही लिये
गौरव शौच आर्जव धैर्य का,अवलम्ब प्रभु का ही लिये
जप तप उपासन योग का, अवलम्ब प्रभु का ही लिये
है गौरव पूरणनाथस्वकापर अवलम्ब प्रभु का ही लिये॥४८॥

आदर्श उसका प्रेम है, आदर्श उसका योग है
आदर्श उसके कर्म है, आदर्श उसका भोग है
नहिं शक्ति जग की एक भी, जो राह उसकी टोक दे
श्री नाथपूरण इष्ट से सम्बन्ध, उसका रोक दे ॥ ४९ ॥

कर लें छुड़ा प्रभु, उर छुड़ा सकते न, दावा सूरका
तुलसी नाता तज सकें, अति निकट या अति दूरका
है सूर तुलसीदास के, जिज्ञासु के हित वाक्य ये
प्रभु मान्य पूरणनाथ संशय रहित, तर्क अकाटय ये ।।५०।।

इस कोटि से भी श्रेष्ठ, जो अनुभूति से निज तृप्त है
जग द्वन्द्व से ऊपर उठा हन्तादि है निर्लिप्त से
वैराग्य में अनुराग या विद्वेष है नहिं राग से
सम शांत पूरणनाथ, वह निस्संग संग्रह त्याग से ।। ५१ ।।

निज में अपर में खम्भ में, तलवार में, प्रभु एक ही
प्रह्लाद को थे दीखते समभाव में, प्रभु एक ही
रघुवर त्वमेवाहम्, पवनसुत की गिरा निस्संक थी
औ नाथपूरण राम प्रतिमा दीप्त अंक मयंक थी ।।५२।।

उनको प्रभु से माँग थी, दावा न प्रभु से था उन्हें
निज रूप औ प्रभु रूप में, अन्तर न मिलता था उन्हें
यह सत्य शरणागति विलक्षण है, जिसे यह प्राप्य है
कृतकृत्य है वह नाथपूरण, धन्य वह सौभाग्य है ।। ५३ ।।

अति अगम और अपार महिमा है, शरण भगवान की
मतिमंद मेरी थी, ढिठाई शरण राम की, बखान की
जिहिं भाव शरणागत हुआ, जो अति अधम दुर्नाम भी
प्रभु ने दिया गति नाथपूरण सोइ, और शुभ नाम भी।५४।

सुनना करो अब शेष जिस विधि हो सके धारण करो
जग से हटा कर दृष्टि, प्रभु से प्रीति निष्कारण करो
अनुभव न करना शेष तुम को, जगत के जंजाल का
लख जग बराबर नाथपूरण, नृपति का कंगाल का ॥५५॥

पल में प्रलय आ जायगी, गति बन्द होगी प्राण की
निश्चिन्त हो जग से, मृषा चिन्तातजकरो कल्याण की
ऐसा सुअवसर जो गया, खाली तुम्हारे हाथ से
रक्षा न पूरणनाथ तब, बहु जन्म के भी सन्ताप से ॥५६॥

संसार सागर में, भयंकर उठ रहा तूफान है
अति जीर्णशीर्ण विदीर्ण, मेरा बह रहा जलयान है
अब हे दयानिधिकर कृपा अपना सहारा दीजिये
अति जानि निर्बल नाथपूरण को, निज शरण में लीजिये ॥५७॥

विकराल धारे रूप माया, प्रबल कटक प्रचण्ड है
मँडरात सिर पर घोर खद्युत काल अति बरिबण्ड है
कामादि खल करि घात, स्वस्य अमोघ अस्त्र चलावहीं
अब नाथपूरण शरण राखु, अतीव भय दिखलावहीं ।५८।

अज्ञान तम घन गगन पूरित दिवस निसि सम हो रहे
रवि चन्द्र नखत उदोत कबहुँ न करत जग जन सो रहे
भवपन्थ भरमत कछुक अनुदिन चलत पार न पाव हीं
बिनु नाथपूरण तव शरण गति, एक सूझ न आवहीं ॥५९॥

जीवहिं नरक, बल करि पठावन, जुरयो खल समुदाय है
अल्पज्ञ निर्बल जीव छूटे जिमि, न एक उपाय है
बहु हेरि चहुँ दिशि, हारि आयउँ सरन, प्रभु अपनाइये
भव उदधि बूड़त नाथपूरण, सद्य पार लगाइये ।। ६० ।।

नहिं ठौर देख्यौ दौरि अब गति भव छाँडि कृपा निधान
अब देर तुम जनि करहु, प्रभु मम देखि अति साँसत प्रान
तजि सकल आस भरोस, तव पहँ माथ नाई, धरनि गिरयो
तजि जाइ कहँ प्रभु तोहिं पूरणनाथ आइ सरन परयो।।६१।।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसार सागरात् ।।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यवेशित चेतसाम् ।। ६२ ।।

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।।
पराभक्तिरुच्यतेः
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहितेरताः ।।
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ।।६३ ।।

ॐ तत्सदु पनिपत्सु, ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे "शरणागति-महिमा"
नामक ग्रंथ समाप्त ।।

प्रारब्ध और पुरुषार्थ का शेषांश

आवत सन्मुख रूप धरे सुख या दुख का यह भाग्य सभी के ।
या कहिये फल देन चले कटुता मधुता इन कर्म कभी के ।।
वृत्ति वहीं खिंचती वह जीव सुखादिक अलिके देखत नीके । अलीक
पूरणनाथ बँधा फिरता रत हेय वरेय अधीन इन्हीं के ।।३३।।

जीव वही वृत्ति संग लिये प्रभु के पथ पै चलना जब ठाना ।
शास्त्र इसी वृत्ति को कहके बहुधा शुभ मोक्ष पिपासा बखाना
है गति भिन्न, दुहूँ वृति की, जिसने श्रुति का उपदेश न माना
पूरणनाथ करै जग लक्ष्य, करै अपरा वृति ब्रह्म निसाना ।३४।

वृति धरे प्रभु मार्ग चले तब, भाग्य चले सुख और दुख लेके ।
काम करे अपना वह दैव, उसे सुविधा कुविधादिक देके ।।
बाढ़ सुखादिक की जिमि पावस की सरिता चहुँ ओरहिं छेके
पूरणनाथ नहीं ललचा घबराकर जीव रुके सर टेके ।।३५।।

तीव्र मुमुक्षुपना उसका, श्रुति संत कहें तब ही कहलाता ।
है परवाह नहीं करता, बरु लाँघि उसे, नित है बढ़ पाता ।।
आलस स्वाद प्रमादन का करि आश्रय, बीच नहीं फँस जाता
पूरणनाथ अभिन्न हुआ वह शान्त स्वरूप समुद्र समाता ।३६।

घूम गया सुख लक्ष्य छुटा यदि मन्द मुमुक्षु उसे कहते हैं ।
आदर दे सुख को दुख को पथ भ्रष्ट हुए जग में रहते हैं ।।
जो न सम्हारि उठे पुनि तो जग द्वन्द्व प्रहार सभी सहते हैं ।
पूरणनाथ नहीं इतना बस संसृति सागर में बहते है ।।३७।।

है करना पड़ता पहले बहु साधन, प्राप्ति मुमुक्षु पने में
किंतु वही फिर मोक्ष प्रकाम, उसे करता वश है अपने में
ज्यों युवती कुछ काल गये, अभया पति के गृह में रहने में
पूरणनाथ नहीं पहले बटु की रूचि, बाद लगे पढ़ने में ।।३८।

साधक मन्द, सशक्ति नहीं, पथ मुक्ति अयोग्य, नहीं व्रतधारी
शास्त्र न मानत है उसको, इस साधन के पथ का अधिकारी
साधक तीव्र सचेत भलो विधि हो, उर में रख साहस भारी
पूरणनाथ महर्षि पतंजलि चित्त विछिप्त कहे अनुसारी ।३९।।

वृत्ति विछिप्त तजे पथ को, सुख दुख परिस्थिति के प्रति जाती
साधक वृत्ति मुमुक्षा पने मँह धारि विछेप उसे अशांत बनाती
ठीक उसी परिमान हटै पथ से, वह साधक धी घबराती
पूरणनाथ विराग कमी, यह तीव्र मुमुक्षुकोपियास घटाती।४०।

हो जिसकी यह वृत्ति, करे वह साधक दर्शन दोष सुखों में
संग नहीं वह भूल करे, घबराय नहीं घन घोर दुखों में
बन्धन तीव्र विराग लगाय, हटे सुख दुःख, प्रवृत्ति सुखों में
पूरणनाथ प्रयास करे दृढ़, दे गति मोक्ष प्रकाम रुखों में।।४१।।

रोक रहे सुख दुःख प्रवृत्ति उन्हें, पहले हम है दिखलाते
वृत्ति नियन्त्रित पूर्णतया कर, जो न निजी वश में कर पाते
किंतु दबावन राग प्रवृत्ति सभी निज शक्ति समूह लगाते
पूरणनाथ उदाहरणादि दिखा, उनकी गति को समझाते।।४२।

पावस में जब भीषण वृष्टि गिरे जल बाढ़ चहूँ दिसि घेरे
मानव मात्र वही जल रोकन में, निज सक्ति प्रयासन्ह प्रेरे
किन्तु जहीं वह बाढ़ प्रकोप घटे, गृह माल वही नर हेरे
पूरणनाथ कहे हरखाय, सुरक्षित मै अरु बालक मेरे ॥४३॥

जो क्षति किंचित वस्तुन की भइ, सो मन से सब सद्य विसारे
विघ्न स्वरुप में पड़े अवशेष उन्हें करि तीव्र प्रयत्न निवारे
लेकर के मन नूतन साहस, सो अपना धन धाम सँवारे
पूरणनाथ वही नर श्रेष्ठ, विसारत भूत भविष्य विचारे॥४४।

वारि लिये सुख दुःख तथैव चले जब भाग्य पयोद कभी है
आदर दायिनि वृत्ति बढ़े सुख औ दुख के प्रति अल्प जभी है
संकट रोकन बाढ़ रचै वह बाँध विराग विवेक तभी है
पूरणनाथ करे परवाह नहीं, वह द्वन्द्व समूह अभी है ॥४५॥

बाढ़ प्रकोप निवारित हो, जब पूर्णतया जल भी घट जाए
शान्ति उपेत लखे मन गेह, व साधन माल सम्हाल कराये
बालक वृन्द लखे वृति ज्ञान व आप स्वरुप सुरक्षित पाये
पूरणनाथ परिस्थिति देखत मार्ग भविष्यत हेतु बनाए॥४६॥

चौसर खेल सुयोग कुयोग मुताबिक दाव यथा मिल जाता
सार पकी घर में करने हित, है वह सर्व प्रयास लगाता
है सबसे पहले वह सार नहीं कचिया, निज लक्ष्य बनाता
पूरणनाथ खिलाड़ि वही,इस चौसर के खेल में सुजान कहाता४७

जीव खिलाड़ि परिस्थिति चौसर है अरु तीन गुणों कृत पासा
सार पकी गति मोक्ष, कची जग, दैवहि दाव, बढे़प्रभु आसा
दैव दिया निजपुञ्ज सभी प्रभु सार पकी प्रतिजोरि हुलासा
पूरणनाथ लगावत जो कचिया जग में,वह मन्द पिपासा।४८।

था उपदेस यहाँ तक तो उसके हित जो जग से वृति फेरा
दर्शनदोष विराग समाश्रित जो दुख ही विषयों महँ हेरा
है उपदेश उसे अब जो दलिके सुख वृत्ति प्रयासन्ह प्रेरा
पूरणनाथ हुआ रत उद्यम में, मन के शम में किय डेरा।४६।

हो न प्रकम्पित लेश, बहादुर घोर, विपत्ति करे बहु घातें
त्याग करे तन से मन से वच से, सपना जग की सब बातें
वृत्ति अहर्निश लक्ष्य करे प्रभु को, बिसरा कर नेह व नाते
पूरणनाथ बराबर हों उस साधक के मन बासर रातें ।।५०।।

नाविक खेवत है तरनी, प्रतिकूल परिस्थिति है पर सारी
है मँडराय रही भँवरी, चलती अति वेग समेत बयारी
वर्षत मेघ तरंग उठै गरजै खल दामिनि है अँधियारी
पूरणनाथ न धैर्य तजे, कर डाँड रहे, मनमें गिरधारी।।५१।।

कार्य जहाँ तक शक्ति रही, कर नाविक जो मध्य से न टरेगा
व्याकुल हो अवलम्ब लिये प्रभु नाम कभी कृति में न करेगा
किन्तु छुटा थक के जहँ डाँड व ध्यान उसे तन का बिसरेगा
पूरणनाथ विलम्ब कहाँ तब दौड़ जनार्दन डाँड धरेगा।।५२।।

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नम ॥

॥ बिखरे मोती ॥

राम नाम की शक्ति जो, जाने सब संसार ॥
पूरन पत्थर जल तिरे, क्यों न होय नर पार ॥१॥

पूरन विषयन भोग में, डूबा सब संसार ॥
बिरले योगी तर सके, तरणि त्याग की धार ॥२॥

त्याग बिना आनंद की, कबहुँ प्राप्ति ना होय ॥
पूरन सूखे ज्ञान में, दियो अमी रस खोय ॥३॥

भक्ति नहीं भगवान की, हुआ न दृढ़ वैराग ॥
पूरण बाते ज्ञान की, किस विध छूटे राग ॥ ४ ॥

वाचक ज्ञानी देखकर, पूरन ततखन त्याग ॥
उससे तो हरि भक्त भला, लागी हरि से लाग ॥ ५ ॥

पूरण तव आगे खड़ी, मौत रही ललकार ॥
चेत सके तो चेत जा, नहिं तो होसी ख्वार ॥ ६ ॥

पूरन तिय व्यभिचारिणी, करतो पति जिमि प्यार ॥
तिमि जग से तू प्रीति कर, निरखो सार असार ॥७॥

पतिव्रत भाव अनन्य से, करती पति जिमि प्यार ॥
कर तिमि दृढ़ रति राम से, पूरन तन मन जार ॥८॥

सूर जाय रणभूमि जिमि, धन तिय सुत तन त्याग ॥
रोम रोम हर्षित तिमि, कर पूरन वैराग ॥ ९ ॥
पूरन मति संतन सदा, प्रभु रति जग वैराग ॥
ग्रहन बिना किय एक के, कबहुं मिटत नहिं राग ।१०।
राग मिटी प्रभु मिलन में, पड़े न जपना जाप ॥
ज्ञान गम्य पूरन कहा, सो तू आपे आप ॥ ११ ॥
पूरन गुरु ज्ञानी गहो, कर साधन सब हाथ ॥
संशय नाहीं मुक्ति में, लो प्रभु रति मति साथ ॥१२॥
गुरु बिन पूरन ज्ञान नहिं, ता बिन मुक्ति न होय ॥
साधन सहित भजन बिना, पहुंचे नाहीं कोय ॥१३॥
रामहिं समझत समझ से, क्यूँ कर समझा जाय ॥
समझता जग को समझ से, पूरन राग नसाय ॥१४॥
जहाँ समझ की गम नहीं, किमि पूरन पिय पाय ॥
नेति नेति कह श्रुति थकी, शास्त्र पार किम जाय ।१५।
थकित होय पूरण समझ, उपज रमज तहँ आय ॥
राम बीच है रमज के, इस विध प्रीतम पाय ॥१६॥
धार विवेक वैराग मन, प्रभु पद दृढ़ विश्वास ॥
आगा पीछा तजि चलो, पूरन गुरु के पास ॥ १७ ॥

ले साधन सूरा चला, सच्चे गुरु का बाल ॥
पूरन पहुंचा ज्ञान गढ़, जहाँ अमोलक लाल ॥१८॥
पाँचों शत्रुन जीतकर, गढ़ घेरा तत्काल ॥
पूरण थापा राज निज, अब सो मालोमाल ॥१९॥
रोम रोम पूरण रम्या, सबका सिरजन हार ॥
कस्तूरी कुन्डलि बसे, फिरता हिरन उजार ॥ २० ॥
आत्म-मनन आतम-कथन, आत्म-निश्चय होय ॥
अनुभव युत निश्चय खरो, पूरन सतगुरु जोय ॥२१॥
अपना घर ही जान कर, मीन मरत है प्यास ॥
जबहीं मुख उल्टा किया, पूरन साँई पास ॥ २२ ॥
आत्म दृष्टि से एक हूँ, देह दृष्टि से दास ॥
जीव दृष्टि से अंश हूँ, पूरण स्वयम् प्रकास ॥ २३ ॥
दृष्टि सृष्टि के वाद से, जग है ब्रह्म विलास ॥
बन्ध्यासुत बाड़ी रची, पूरन आई बास ॥ २४ ॥
ज्ञाता ज्ञान रु ज्ञेय की, भई कल्पना नास ॥
मन वाणी पहुँचे नहीं, पूरण, दूर न पास ॥ २५॥

---

(१)

ओ३म् भूर्भुव. स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य ।
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

(ओ३म्) हे ईश्वर दयानिधे (सवितु·) सकल जगत् को उत्पन्न करने वाले (देवस्य) देवो के देव आपका जो (भू·) प्राण प्रिय (भुवः) दु·खनाशक (स्वः) सुखस्वरूप (वरेण्यम्) वरणीय अतिश्रेष्ठ तथा (भर्ग.) शुद्ध स्वरूप है (तत्) उसका हम (धीमहि) सदा ध्यान करे, अपने आत्मा में धारण करें (यः) जोप्रभु (न.) हमारी (धियः) बुद्धियो को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे और कुमार्ग से हटा कर सदा सन्मार्ग में लगाएँ ।

(२)

हंकारेण बहिर्याति, सकारेण विशेत्पुनः ।
हंसो हंसेति मंत्रेण, जीवो जपति सर्वदा ।।

सोऽहँ शब्द विचारो साधो सोऽहँ शब्द विचारो रे ।।टेर।।
माला कर से फिरत नहीं है, जीभ न वर्ण उचारो रे ।
अजपा जाप होत घट मांहीं, ताको ओर निहारो रे ।।१।।
'हँ' अक्षर से स्वाँस उठावो, 'सो' से जाय बिठारो रे ।
'हँसो' उलट होत है 'सोऽहँ', योगीजन निरधारो रे ।।२।।
सब मिलाकर इक्कीस हजार छ. सौ, होत शुमारो रे ।
अष्ट पहर में जागत सोवत, मन में जपो सुखारो रे ।।३।।
जो जन चिन्तन करत निरन्तर, छोड़ जगत व्यवहारो रे ।
ब्रह्मानन्द परमपद पावे, मिटे जनम संसारो रे ।।४।।

(३)

गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ।
सबंधाद् वृष्णयः स्नेहाद् यूयं भक्त्या वयं विभो ।भा०७-१-३५

गोपियों ने मिलन की तीव्र कामना से, कंस ने भय से, शिशुपाल आदि कुछ राजाओं ने द्वेष से, यादवों ने पारिवारिक सम्बन्ध से, आपने स्नेह से और हमने भक्ति से अपने मन को भगवान् से जोड़ लिया है ।[कुछ गोपियाँ कृष्ण को काम भाव से भजती थी । श्रीकृष्ण का स्वरूप देखकर भले ही उनके प्रति काम भाव जाग्रत हो जाये किन्तु जिनका ध्यान करते है वह तो निष्काम है । निष्काम कृष्ण का ध्यान करती हुई गोपियाँ भी निष्काम हो गईं । किन्तु जगत के स्त्री-पुरुषों का ध्यान काम भाव से करोगे तो नरक में जाना होगा, यह ध्रुव सत्य है । कोई व्यक्ति इस दवा से अपनी काम भावना (वासना) मिटाना चाहे तो मिटा सकता है ।]

(४)

कृष्ण त्वदीय पद पंकज पंजरान्ते ।
अद्यैव मे विशन्तु मानस राजहंसः ।।
प्राण प्रयाण समये कफवात पित्ते ।
कण्ठावरोधन विधौ स्मरण कुतस्ते ।।

(५)

पूरण पाप के कारण ही, हरि कथा न भावे जिनको ।
तिन गनिका नारी बुलाय लही, नचावत है दिन ही दिन को

तब मृदंग कहे धिक्क है धिक्क है, मंजीर कहे किनको किनको
तब हाथ उठाय के नारी कहे, इनको इनको इनको ।।

(६)

भक्ति हीन जगत यश नहीं, दया नहीं न परोपकार ।
कबीर अन्त में सब कोई मरे, जीवत मर गये ये चार ।।

(७)

साहूकारी है भरम की, दुकानदारी है नरम की ।
रिश्तेदारी है शरम की, हाकमी है गरम की ।।

(८)

सुखस्य दु खस्य न कोऽपिदाता, परोददाति इति कुबुधीर्एषा ।
अहँ करोमीति वृथाऽभिमान, स्वकर्म सूत्रं ग्रथितं हि लोक. ।।

(९)

अधर्मोपार्जितैरर्थैय करोत्यौर्ध्वं देहिकम् ।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य पुरागमान् ।।

(म० भा० उद्योग पर्व ३९।६६)

जो अधर्म के द्वारा कमाये हुए धन से परलोक-साधक यज्ञादि कर्म करता है, वह मरने के बाद उसके फल को नहीं पाता क्योंकि उसका धन बुरे मार्ग से आया हुआ होता है ।

(१०)

जिसने जिसको ज्योंही देखा वो पूछ रहा है क्या देखा ।
प्रेम भरी चितवन से नैनों में छिपकर क्या देखा ।।

कब से देखा कब तक देखा किसने किसको कैसे देखा ।
अनजान बना जाता है क्यों सच बोल बता क्या देखा ।।
कितने प्रलयों की गोदों में जड़ चेतन को होते देखा ।
उन्माद भरे कलोलों में फिर कब विकसित होते देखा ।।
सच्चिदानन्द निर्गुण को क्या सगुण प्रकृति के संग देखा ।
पाँचों तत्वों के स्थूल-सूक्ष्म रूपों में किसका तूँने वह रंग देखा ।
इन स्वाँसों की झनकारों में किसको मुखरित होते देखा ।
भ्रमरों के मृद गुंजारों में किसको सुरभित होते देखा ।।
सुख में स्वप्नों की समता में किसकी माया का भ्रम देखा ।
भक्तों को आ अपनाने में किसका तूँने यह श्रम देखा ।।
मानस की मस्त तरंगों में कुछ अद्भुत सा बहता देखा ।
ले देख युगल मै ही तो हूँ यूँ मोहन को कहते देखा ।।

(११)

हर भज हर भज हीरा परखले समझ पकड़ नर मजबूती ।
सही नाम सतगुरुजी का साँचा और वारता सब झूठी ।टेर।
सत नाम को सेल बनाले ढाल बनाले धीरज की ।
पाँचों ने मार पच्चीसों ने वशकर, जद जाणों थारी रजपूती
पाँच चोर बसे काया में उनकी पकड़ो शिरचोटी ।
काम क्रोध ने मार भगाओ जद जाणों थारी बुध मोटी ।२।
रुणझुण रुणझुण बाजा बाजे झिलमिल २ जग रही ज्योति
रकार मकार बीच में हंसलो चुग रयो निज मोती ।३।

ज्ञान घटा ले म्हारा सतगुरु आया अमृत बून्दों हद बूठी ।
त्रिवेणी के रंग महल में हरिजन लालों हद लूटी ।।४।।
रंग महल में हरिजन आया वे लाया कछु जड़ी बूटी ।
अष्ट कमल पर खेले मेरे दाता और वार्ता सब झूठो ।।५।।
पदकी धड़ी का तोल बनालो कांण न राखो एक रत्ती ।
मच्छेन्द्र शरणे यति गोरक्ष बोले अलख लखे सो खरा यती

(१२)

भरथरी भूप भयो वैरागी राम भजन लीव लागी ।।टेर।।
तन त्यागी ज्यारों मन वैरागी, सुरता रामजी से लागी ।
मन वश करके राख्यो मुट्ठी में चाँद सूरज दोय साखी ।।१।।
हाथी घोड़ा छोड्या घूमता राजपाट सब त्यागी ।
जोग लियो जग जातो देख्यो धरा उज्जीणी त्यागी ।।२।।
कनक कोट कुटम्ब कुल न्याती तुरिय अठारह लख त्यागी ।
सेजा में रमती सुन्दरी त्यागी जाँकी प्रीति रामजी से लागी
सतगुरु सैन समझकर दोन्हीं धर हृदय बिच राखी ।
शरण मच्छेन्द्र जती गोरख बोले भेष लियो बड़भागी ।।४।।

(१३) मगल

सुरती करत पुकार बैरी नहीं होय रे ।
मुसाफिर झटकै जाग रहो मत सोय रे ।।१।।
सूतां तव जावे ही दाव आवै नहीं कोय रे ।
फिर लख चौरासी जूण फिरेगा ही रोय रे ।।२।।

जगत जंजाल है झूठ रहो सत मोय रे ।
गुरु के शरण में जाय निजानन्द जोय रे ॥३॥
परमानन्द परकास में लगाओ ही लोय रे ।
उत्तमनाथ ही समझ भरम कूं खोय रे ॥४॥

(१४

महाराजाधिराज भरतृहरिजीने आचार्य शिरोमणि भगवान् श्री गोरक्षानाथजी द्वारा मृत मृगा के पुनर्जीवित कर देने के उपरान्त, सब राजपाट का सर्वन त्याग कर आचार्य श्री सतगुरुदेव का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था। यह प्रसङ्ग तो सर्व विदित ही है। शिष्यत्व ग्रहण करने पर सद्गुरु देवजी ने उनका नाम "विचारनाथ" रखा था। फकीरी लेने के कुछ काल पश्चात् सतगुरु देव ने एक दिन विचारनाथजी को सम्बोधन करते हुए कहा 'हे भरतृहरि तुम महान् भाग्यशाली एवं पुण्यात्मा हो जो जगत् के इतने विशाल वैभव को ठोकर मारकर निवृत्ति मार्ग पर आरूढ़ हो गये हो।" सद्गुरुदेवजी के ऐसे वचन सुनकर उन्हें अत्यधिक सकोच का अनुभव हुआ, कारण महापुरुषों को स्व-स्तुति असहनीय ही होती है। उन्होंने अति नम्रता से करवद्ध होकर निवेदन किया "महाराजजी मैं तो अति तुच्छ व्यक्ति हू। मेरी इस तरह की वन्दना आपके श्री मुख से केवल आपकी कृपा और स्नेह के वश ही हो रही है। मै

तो अति निन्दनीय पुरुष हूँ जिसने कि आपका शिष्यत्व भी आपकी परीक्षा लेने के बाद ही लिया था।"

श्री विचारनाथजी की ऐसी संकोचभरी वाणी सुनकर सद्गुरुदेव ने उन्हे आज्ञा दी कि सामने वाली पहाड़ी पर जाकर वहाँ पर जो भील रहता है उसे बुला लाओ। आज्ञा शिरोधार्य कर जब वे पहाड़ी पर पहुचे तो क्या देखते है कि अतिशय जीर्ण-शीर्ण टूटी-फूटी कुटिया मे नितान्त निर्धनता के मध्य भीलदेव विराजमान है। घर मे दो मुट्ठी चून की सामग्री भी नही। जब उन भील को गुरुदेवजी का बुलाने का सदेश कहा तब वह बोला "मुझे क्या तुमने राजा भरतृहरि जैसा मूर्ख समझ रखा है, जो अपनी गृहस्थी छोड़कर मोडों के पीछे अलख जगाता, घूमता फिरू ? मेरे तो घर में रामजी राजी है। मै कही नही जाता।"

गुरुदेवजी के पास लौटकर जब विचारनाथजी ने यह संवाद उन्हे सुनाया तब उन्होने कहा, "देखा बेटा ! ससार की आसक्ति कितनी प्रबल है जो कि ऐसी दीन-हीन अवस्था में भी घर छोड़ने नही देती। तूँ तो वास्तव में स्तुति का अधिकारी है जिसने कि भरे-पूरे राजसमाज के सुखो को एक ही क्षण मे त्यागकर सन्यास ग्रहण कर लिया। तूँ धन्य है।" तूँ धन्य है॥

(१५)

श्री गुरु उत्तमनाथ के चरणों शीश नवाय ।
पद पंकज अति पवित्र रज परसत विघ्न नशाय ।।
अभयदान सत्गुरु दियो हिरदे रह्यो समाय ।
मनवाणी पहुँचे नहीं नेति नेति श्रुति गाय ।।

(१६)

आरती सतगुरुदेवजी की कीजै, सुर नर मुनिजन सब ही रीझे
।।टेर।।
सतगुरु स्वामी अनन्त फल दाता, जाको अन्त कबहु न आता ।
शीश नारेल चरण धर दीजे ।।१।।
जप तप नेम किया बहुतेरा, मिटिया नहीं चौरासी का फेरा ।
और ठौर मेरो मन न पतीजे ।।२।।
सतगुरु ब्रह्मा विष्णु जानो, सतगुरु शंकर आप पिछानो ।
सतगुरु पूरण ब्रह्म कहीजे ।।३।।
सतगुरु रूठे सब कोई रूठे, ब्रह्मा विष्णु भी होत अपूठे ।
सतगुरु मने तो सब ही मनीजे ।।४।।
चाह को चन्दन करनी की केसर, ज्ञान वैराग गुलाल चढीजे ।
श्रद्धा को थाल सु परम सजीजे ।।५।।
विरह की अगन गम को गूगल, धूप दीप नित ध्यान करीजे ।
प्रेम कपूर सोई धर दीजे ।।६।।
नाथ विवेक मन ऐसी आई, सुन लीजो सब बहनों भाई ।
सतगुरु चरण कमल चित्त दीजे ।।७।।

(१७)

मन रे निज वैरागी होना ।
राजा रंक एक सम जानो, ज्यों कंकर ज्यों सोना ।।टेर।।
तज पुरवास उदासी विचरो, मत कोई बांधो भवना ।
गिरि तरु मढ़ी मसानों में, रहणा या कोई देवल सूना ।१।
भूख लगे जब भिक्षा लेना, करहिं कर लेना दूना ।
शीत निवारण जर जर कंथा, ता पर थेगड़ जूना ।।२।।
तन मन जीत प्रीत सतगुरु से, धरना ध्यान अकूणा ।
जब दिल पाक दयानिधि पावे, गावे सुर नर मुना ।।३।।
आशा तृष्णा दूर निवारो, हरिभज हृदय धोना ।
राम जन वैरागी बोले, हरिचरणों को छूना ।।४।।

(१८)

रंगीला रामजी हो थांरा केवा करूँ बखाण ।।टेर।।
ऊपर सूँ भक्तों ने तावो, भीतर दया की खान ।
थाँरी महिमा सुण के, मै तो वारूँ मेरा प्राण ।।१।।
ऊपर सूँ थे करड़ा दीसो, भीतर गंग समान ।
तुम्हारी लीला तुम ही जानो, कोई कैसे करे पहिचान ।।२।
बाहर तो थे सगुण बणिया, भीतर निर्गुण विद्वान ।
सगुण निर्गुण तुम तो नाहीं, केवे वेद पुरान ।।३।।
अनभेश्वर कहै तुम हो मालिक, दूजो नहीं है आन ।
मैं तो मिल्यो तुम्हारे मांहीं, गावे सन्त सुजान ।।४।।

(१९)

मुक्त परीक्षित होय गयो रे, सुनत भागवत बानी ॥टेर॥

मुनि सुखदेव से प्रश्न कीना, धर्मों में धर्म कौन प्रवीना ।
पूछत दिल हर्षाय रयो रे, सुनत० ॥१॥

धर्म वैष्णव बड़ा कहीजे, भूप चित्त इस ही में दीजे ।
यही वेद शास्त्र मोंही कयो रे, सुनत० ॥२॥

अष्टादश पुरान बखाने, भागवत सबके मन माने ।
हरिभक्तों को यश छाय रयो रे, सुनत० ॥३॥

कथा भागवत जहाँ पर होवे, सुनत पाप पल भर में खोवे ।
हरि भक्तों के आनन्द भयो रे, सुनत० ॥४॥

जहाँ पर बंचे भागवत ज्ञान, तीर्थ सकल उसी जगह जान ।
होवे विघ्न दूर सुख नित नयो रे, सुनत० ॥५॥

बारह स्कन्ध पुराण सुनाऊँ, संशय तेरा सकल मिटाऊँ ।
सुन भूप प्रेम उर में थयो रे, सुनत० ॥६॥

सगरी कथा मुनिवर भाषी, सुनी परीक्षित श्रद्धा राखी ।
चित्त मन श्रवण में दियो रे, सुनत० ॥७॥

राम कृष्ण कथनी कर गाया, परमपद परीक्षित पाया ।
सुखदेव मुनि से सुख लियो रे, सुनत० ॥८॥

(२०)

दृढ़ वक्ष स्थूल भुजदंड सबल यह कंचन जैसी काया है ।
आंखों में चमक चहरे में दमक यह ब्रह्मचर्य की माया है ।टेर

जो इस महत्व को भूल गया वह भूल गया सुख की गलियाँ
यौवन बसंत के पहले ही मुरझी उसकी जीवन कलियाँ ।।
आँखों के नीचे गढ़े है, गढ़ों में काली छाया है ।।१।।
उमंग रहे उल्लास रहे निर्भयता शान्ति साथ रहे ।
वो प्रातः के शोभित फूलों सा मुख खिला खिला दिन रात रहे
तन मन आनन हर्षित उनका जिसने इसको अपनाया है ।२
हीरा हो लेकिन कान्ति न हो, दीपक हो लेकिन तेल न हो ।
मोती हो लेकिन आब न हो साथी हो लेकिन मेल न हो ।।
दो कौड़ी उसकी कीमत है जिसने यह लाल लुटाया है ।३।
अहिंसा और सत्य का साथी है जप तप का शृंगार है ये ।
केवल मुनि सारे व्रतों में ब्रह्मचर्य को श्रेष्ठ बताया है ।।४।।

(२१)

भक्तन की महिमा अमित, पार न पावे कोय ।
जहाँ भक्त जन पग धरे, असदृश तीरथ सोय ।।

ईश्वर का शरीर पञ्चभौतिक नही, अतः उनके शरीर सम्बन्धी सौन्दर्यता भी अलौकिक ही होती है । उनकी मनोहरता को देखकर अरिदल भी मोहित हो जाता है फिर साधारण पुरुष की तो बात ही क्या । भक्त तो उसमें विभोर रहता ही है ।

देह दृष्टि में जब जगत् बाधित ही है तब उसकी (ज्ञानी की) दृष्टि से भक्ति भी वैसी ही बाधित ही है ।

परन्तु ज्ञान के बाद भी जो भक्ति होती है उस अवस्था में ज्ञानी भगवान् को देह दृष्टि से पिता एव स्व को पुत्र मानता है। यही ज्ञान के उपरान्त होने वाली भक्ति है। और इसी को परम पूज्य संत तुलसीदासजी ने विशेषकर रामायण-उत्तरकाड मे ज्ञान से श्रेष्ठ बताया है।

अध्यात्म रामायण मे भक्तप्रवर श्री हनुमानजी इस पराभक्ति का विवेचन करते हुए प्रभु श्री रामचन्द्रजी से निवेदन करते है।

देहबुद्धया तु दासोऽहं, जीव बुद्धया त्वदंशकः।
आत्मबुद्धया त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥

(२२)

बूंद ने साधु को कहा कि मेरी बडी इच्छा है कि मैं समुद्र हो जाऊँ, साधु ने कहा कि सिर्फ एक ही तरकीब है कि तू मिटने को राजी हो जावे तो मिटते ही सागर हो जाओगी। जब तक तुम अपना अलग अस्तित्व बनाए हुए हो तुम्हारी इच्छा पूरी नही हो सकती। बूद ने साधु की बात मानली और वह सागर में कूद गई। उसने स्वय को खो दिया और बदले मे पाया सागर। बूंद स्वय मिट गई परन्तु बूद से सागर हो गई। भला इसे कोई मिटना कहेगा ? अगर यही खोना है तो फिर पाना क्या है ? परन्तु ऐसा पाने के लिए अपने अहम को, अपने अहकार को मिटाना

पड़ता है। जब तक हम अहंकार की तुच्छ बूंद बने हुए है, हम परमात्मा रूप सागर को नहीं पा सकते। आइए आज हम अहकार से मुक्त होने की बात पर चितन करे।

छोड़ा तो उसे जा सकता है जिसे पकड़ा जा सके तो क्या अहंकार पकडा जा सकता है?

एक गली मे एक बालक रो रहा था। वह छाया को पकड़ना चाहता था। वह छाया को पकडने की जितनी चेष्टा करता उतनी ही छाया आगे सरक जाती। बालक निराश होकर रो रहा था। लोगो की भीड़ लग गई। सब लोग कह रहे थे, "भला छाया भी कभी पकड में आ सकती है?" उधर से एक फकीर निकला। उसने बालक से पूछा तुम छाया को पकडना चाहते हो, मै तुम्हे एक तरकोब बताता हूँ। फकीर ने बालक के सिर पर उसीका हाथ रख दिया और कहा अपने आप को पकड लो। बस लोगों ने देखा कि छाया ने भी हाथ उठाकर स्वय को पकड लिया। बालक प्रसन्न हो गया। मगर उसने क्या वास्तव में स्वय छाया को पकड़ लिया था?

यह छाया ही हमारा अहंकार है। अहकार को पकडने के लिये स्वय को पकड़ना पड़ता है। स्वयं को पकडते ही अहकार खुद पकड़ में आ जाता है। जो लोग अहंकार को पकड़ना चाहते है वे भी उसी बालक की तरह भूल करते है,

क्योंकि अहंकार सिर्फ हमारी छाया है। छाया न पकड़ी जा सकती है न छोड़ी जा सकती है, छाया सिर्फ पहचानी जा सकती है। अगर आप पहचान ले कि अहंकार की छाया आपके जीवन मे कहाँ है तो बस काम हो गया। अहंकार पर आपका अधिकार हो जावेगा, तब आपको बूंद होने की तुच्छता का अहसास (भान) नही होगा। आप सागर मे कूदकर बूंद से सागर बन जायेगे। इसलिये सिर्फ करना यह है कि हम अपने अहंकार को पहचाने व स्वयं को पकडे।

(एक महात्मा का प्रसाद)

(२३)

महावाक्यो के दोनो दोनो पदो के लक्ष्यार्थ की एकता का बोध भागत्याग लक्षणा द्वारा आचार्यो के कराने पर भी यथार्थ एकता का ज्ञान नही होता और एकता अंश मे स्थित माया-अविद्यारूप कारण से परोक्षता और परिच्छिन्नता की भ्रान्ति होती है उसके निवारणार्थ ओत-प्रोत भाव की रीति करनी चाहिए।

'तत्' पद के अर्थ मे परोक्षता की भ्रान्ति के निवारण के लिये 'तत्त्व' (सो तूँ है) कहकर 'तत्' पद के अर्थ के उद्देश्य से 'त्वं' पद का अर्थ विधेय है और 'त्वं' पद के अर्थ में परिच्छिन्नता-भ्रान्ति के निवारणार्थ त्वतत्' (तूँ सो है)

में 'त्वं' पद के अर्थ के उद्देश्य 'तत्' पद की अर्थरूपता विधेय है। क्योंकि 'तत्' पद के अर्थ 'ब्रह्म' की परोक्षता-भ्रान्ति का नाश 'त्वं' पद के अर्थ नित्य अपरोक्षसाक्षीरूपता से होता है और 'त्व' पद के अर्थ 'साक्षी' की परिच्छिन्नता-भ्रान्ति का नाश 'तत्' पद के व्यापक-ब्रह्मरूप अर्थ से होता है। इसी प्रकार 'अहं ब्रह्म' 'प्रज्ञानं ब्रह्म' 'आत्मा ब्रह्म' इस प्रकार के ज्ञान से तो परिच्छिन्नता नष्ट होती है और 'ब्रह्म अहं' 'ब्रह्म प्रज्ञानं' 'ब्रह्म आत्मा' इस प्रकार जानने से परोक्षता की हानि होती है।

ओत-प्रोत-भाव की यही रीति श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध पंचम अध्याय के बारहवे श्लोक में श्री शुकदेवजी ने परीक्षत् राजा को समझाई है।

(श्री विद्यारण्यमुनि विरचित 'पञ्चदशी' ग्रन्थ के महावाक्य-विवेक-प्रकरण-५ पृष्ठ २०८ से)

(२४)

कृतकृत्यतया तृप्तः प्राप्तप्राप्यतया पुनः।
तृप्यन्नेवं स्वमनसा मन्यतेऽसौ निरन्तरम् ॥१॥
धन्योऽहं धन्योऽहं नित्यं स्वात्मानमञ्जसा वेद्मि।
धन्योऽहं धन्योऽहं ब्रह्मानन्दो विभाति मे स्पष्टम् ॥२॥
धन्योऽहं धन्योऽहं दुःखं सांसारिकं न वीक्षेऽद्य।
धन्योऽहं धन्योऽहं स्वस्याज्ञानं पलायितं क्वापि ॥३॥

धन्योऽहं धन्योहं कर्त्तव्यं मे न विद्यते किञ्चित् ।
धन्योऽहं धन्योहं प्राप्तव्यं सर्वमद्य संपन्नम् ॥४॥
धन्योऽहं धन्योऽहं तृप्तेर्मे कोपमा भवेल्लोके ।
धन्योऽहं धन्योऽहं धन्योधन्यः पुनः पुनर्धन्यः ॥५॥
अहो पुण्यमहो पुण्यं फलितं फलितं दृढम् ।
अस्य पुण्यस्य संपत्तेरहो वयमहो वयम् ॥६॥
अहो शास्त्रमहो शास्त्रमहो गुरुरहो गुरुः ।
अहो ज्ञानमहो ज्ञानमहो सुखमहो सुखम् ॥७॥
तृप्तिदीपमिमं नित्यं येऽनुसंदधते बुधाः ।
ब्रह्मानन्दे निमज्जन्तस्ते तृप्यन्ति निरन्तरम् ॥८॥

(श्री विद्यारण्यमुनिविरचित पञ्चदशी के सप्तम प्रकरण तृप्तिदीप श्लोक २९१ से २९८)

(२५)

कुछ वर्ष पूर्व की कलकत्ता हाईकोर्ट के एक वरिष्ठ जज महोदय के जीवन की सच्ची घटना नीचे दे रहे हैं। यह कर्मयोगी को स्वपथ में अतिशय प्रेरित करने वाली है।

जज महोदय नियमित समय पर हाईकोर्ट जा रहे थे। मार्ग में एक पुकुर (तालाब) मे सुअर का एक बच्चा पानी के कीचड़ मे फंसा हुआ बाहिर निकलने का विफल प्रयास करता हुआ अतिशय पीड़ित व व्याकुल अवस्था मे दृष्टि-गोचर होते ही उक्त जज महोदय अपने राजकीय वेष-भूषा

मे जैसे थे वैसै ही तालाब में उतर गये और उस बच्चे को गोदी मे लेकर बाहिर निकाल दिया। इस क्रिया मे उनके सारे वस्त्र गदे हो गये। हाईकोर्ट समय पर पहुंचना अति आवश्यक था—वे इस ड्यूटी की उपेक्षा कदापि भी नही कर सकते थे—अत उसी अवस्था मे कोर्ट में पहुच गये।

उनकी ऐसी अवस्था देखकर अन्य जज, वकील आदि जन समुदाय सभी स्तम्भित हो गये और कारण जानने को अति उत्सुक हो गये। जज महोदय ने सारी घटना सुनाते हुए बताया कि उनके हृदय मे उस समय अतिशय वेदना जाग्रत हो गई थी और अपनी व्यथा को शान्त करने हेतु उन्हे उस बच्चे को संकट से उबारना परम आवश्यक हो गया था। उस समय उनके मन मे उस जीव पर किसी भी तरह का उपकार करने का कोई भी विचार या भाव नही था—केवल स्व-वेदना निवारण का भाव ही प्रमुख था।

इस घटना से प्रेरणा लेते हुए सभी कर्मयोगियों को अपना विहित कार्य करते हुए "जीवमात्र का कष्ट अपनी ही वेदना रूप में प्रकट हो" ऐसा स्वभाव बनाकर उनके कष्ठ निवारण में यथा सामर्थ्य लग जाना चाहिये—मान सम्मान, पर-उपकार आदि ऐसी किसी भी भावना को अपने निकट नही आने देने में ही उनका परम कल्याण है।

(२६)

देशमरुस्थल में, धरके अवतार तो उत्तम आये हैं ।
जीव उधारण या कारण से, स्थूल वपु धर आये है ।।टेर।।
वेदों का वाक्य सुना करके, ये तो भेद बुद्धि को नसाते है ।
जीव ईश का भेद छेद के, एको ब्रह्म बताते हैं ।।१।।
वेद पुराण वाशिष्ठ रु गीता, ये तो निश दिन गाते हैं ।
उत्तम सेन लखी नहीं जावे, याते भव दुख पाते हैं ।।२।।
मूरख जीव लखे नहीं लखनी, ये तो अजब लखानी है ।
इस लखनी को जो कोई लखता वे जीवन मुक्ति मांणी हैं ।।३।।
उत्तम पद सबै परिपूरण, सो तो उर में लखानी है ।
उत्तम चरण पे शीश झुकाके,अब जनम मरण नहीं आणीं है ।
उत्तमनाथ मिल्या गुरु पूरा, ये ही सेन कहानी है ।
नाथ वैराग राग सब त्यागो, ये ही सुख की खानी है ।।५।।

(२७)

फकीरी ले कोई बिरला वीर ।
काम क्रोध कूँ मार गिरावे, निकल चले पैली तीर ।।टेर।।
काम की महिमा देखो जगत में, वशकिया है सबका शरीर ।
कीट पतंग ब्रह्मादिक लेके, सब काम के हैं यह कीर ।।१।।
और जीवों की क्या कहनी है,इण घेरे ऋषि मुनि और पीर ।
इनको जीत चले कोई शूरा, वो ही है असल फकीर ।।२।।
जीव जावे जिस योनि में, यह आगे खड़े ले तीर ।
इनको वश करनो है मुशकिल, यह है टेढ़ी खीर ।।३।।

उत्तमनाथ मिले रणझंके, कवच पहरायो जंजीर ।
नाथ वैराग के चोट न लागे, यह खाली जावे सब तीर ॥४॥

(२८)

राग—अचलनाथ में बैठो महादेव ।

आज तो दिवस गुरुदेवरो गुरुवार रो ।
चालो चालो दरशन करने करने आज रे ।
गुरु अजनेश्वर का ॥टेर॥

गंगवाल की पहाड़ी पर आप बिराजे बाबो आप बिराजे, गंगलं
लहल समाधि आसन पद्म जमाय रे जमाय रे ॥१॥
टके भर चून भोजन आप अरोग्यो, आप अरोग्यो ।
बारह तो बरष राखि मून रे मून रे ॥२॥
कानों में बिराजे मुद्रा जोग री रे जोग री रे ।
अनहद तो सुणीजे घट में नाद रे नाद रे ॥३॥
पहरण ने तो अचलो सोवे आपरे रे बाबा आपरे ।
चरणों में खड़ाऊ सुन्दर भेष रे भेष रे ॥४॥
रिद्धि सिद्धि धन रा कुबेर हो बाबा कुबेर रे ।
अन्न-जल थांरे भरिया है भंडार रे भंडार रे ॥५॥
देवो ने देवता थांरा गुण गावे बाबा गुण गावे रे ।
नित नित वे तो धरे आपरो ध्यान रे ध्यान रे ॥६॥
भक्त भजे बाबा आपने बाबा आपने रे ।
ज्यांरे नित दर्शन कर चरणामृत रो नेम रे नेम रे ॥७॥

केई तो जीवों ने पार उतारिया पार उतारिया ।
भूत प्रेत रो थे कियो उद्धार रे उद्धार रे ॥८॥

बालेश्वर बाबा सेवा टहल करे बाबा टहल रे ।
कलारामजी डोले आपरे भाव रे भावरे ॥६॥

तुलछेश्वर बाबा करे बीनती बाबा बीनती रे ।
सन्तों री परतिज्ञा राखो आप रे आप रे ॥१०॥

शान्तेश्वर थांरी शरण है बाबा शरण है ।
राखो थांरे चरणकमल वरदहस्त री छांय छांय रे ॥११॥

(२६)

इस जगत में व्यवहार ही विगड़ा है और उसी को सुधारना है, परमार्थ तो स्वत सिद्ध ही है ।

भोग-प्रधान जीवन बिताने वाले पामर पुरुषों का व्यवहार तो दोष पूर्ण रहता ही है परन्तु विषयी पुरुषो पर भक्ति-प्रधान जीवन बिताते हुए उत्तरोत्तर अध्यात्मिक वृद्धि करने का विधान है । जिज्ञासु मुमुक्षु तो ज्ञान-योगारूढ़ हो जाने में प्रयत्नशील व रत रहते ही है ।

निष्काम कर्मयोगी द्वारा कामना रहित होकर स्व-कर्त्तव्य में भली प्रकार से जुड़ जाना ही सेवा है । सगुण साकार एंव सगुण निराकार ब्रह्म से दत्तचित्त भाव विभोर होकर प्रेम करना भक्ति योग बन जाता है । निर्गुण-निराकार ब्रह्म में

एकीभाव से वृत्ति की स्थिति एवं चिदाभास को ब्रह्मरूपेण प्राप्ति होना ही **ज्ञानयोग** है ।

श्री मद्‌भगवद्‌गीता ५/२ में श्री भगवान् स्वय ने अपने श्रीमुख से कर्मयोग को कर्मसन्यास से श्रेष्ठ बताया है । इस 'कर्मयोग' को हृदयंगम कर व्यवहार में उतारना ही श्रेय है । ईश्वर-भक्ति प्रधान जीवन बिताने से व्यवहार सुधरता है । **"सपौं दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में..."** अनुसार अविचल शरणागति एव **"सीताराम सीताराम कहिये, जाहि विधि राखे राम तिहि विधि रहिये ....."** भाव से केवल उस प्रभु के मगलमय विधान का आसरा आदि ये सभी भक्ति के सूत्र है ।

दैनिक व्यवहार में प्रातः ब्रह्म-मुहुर्त में अपने इष्टदेव का स्मरण करते हुए शैय्या परित्याग करने के उपरान्त प्रात सात बजे तक नित्य नैमितिक कर्मो से निवृत्त होकर दूध कलेवा आदि का अल्पाहार सभी को करवा कर स्वय भी कर लेना सद्‌गृहणी का धर्म है । तदुपरान्त १०-११ बजे तक पूजा, पाठ, सेवा, आरती आदि करती हुई भगवद्‌भाव मे तल्लीन रहे । अपनी गृहस्थी की सुविधा व अनुकूलता, घर मे पुत्र-वधु आदि की उपलब्धता आदि सब को ध्यान में रखते हुए प्रात.काल के भोजन व्यवस्था का समय नियोजित कर उसी अनुसार कार्यरत हो जावे । इस सर्व कार्य

में स्वार्थ-भावना का त्याग कर सेवा-भाव की प्रधानता रखते हुए जुट जाये। सारा कार्य भगवद्बुद्धि रखते हुए सेवा भाव से करे। यही विचार का स्वरूप है। विचार में भगवद्बुद्धि की प्रधानता रहती है लेकिन सासारिक चिन्तन में व्यक्ति-वस्तु आदि की प्रधानता हो जाती है। यही दोनो में भेद है।

भोजन के कार्य से निवृत्त होकर स्वल्प समय तक विश्राम कर लेवे। तदुपरान्त पुनः स्वाध्याय, सत्सग आदि में प्रवृत्त हो जावे। सध्या समय पुनः गृहस्थी के भरण-पोषण हेतु अन्नपूर्णा भाव से महाप्रसाद की योजना में लग जावे। घर में पुत्र-वधु आदि योग्य हो तो यह सारा भार उन्हीं को सौपकर स्वय भजनादिक क्रिया में ही रत रहना श्रेयस्कर है। इस प्रकार सर्वकाल भगवद् स्मरण-चिन्तन करते करते रात्रि मे शयन करे।

इस प्रकार के सात्त्विक वृत्ति से ओतप्रोत व परिपूर्ण दैनिक जीवन से उस गृहिणी का कल्याण अवश्यम्भावी है, इसमे तनिक भी सन्देह नहीं।

आजकल बहुत सी गृहिणियाँ नौकरी, धधा आदि भी पुरुष वर्ग के समान ही करने लगी है। कोई डाक्टर है, कोई नर्स; कोई अध्यापक है, कोई जज मजिस्ट्रेट अथवा वकील आदि। इन सभी को भी अपनी ड्यूटी आदि के समय का

नियोजन कर उपरोक्त भक्ति-प्रधान जीवन ही समानतया व्यतीत करना चाहिये । स्व स्व कार्य करते समय "यथा देव तथा बलि" व स्वकार्य-क्षेत्र को प्रभु का मन्दिर मानकर "पूजा में पुजारीवत्" सेवाभावरत निष्काम निस्वार्थ होकर कार्य करने से कर्मयोग निश्चय ही सिद्ध होता है ।

यथा, डाक्टर रोगी का उपचार करते समय अपनी नित्य की दिनचर्य्या की, अगर आवश्यक हो तो, उपेक्षा करके भी रोगी को भगवान् का रूप मानते हुए आपरेशन आदि क्रिया में जुट जावे । लक्ष्य केवल रोग निवारण हो; अर्थ की प्राप्ति, यहाँ तक कि रोगी के प्रति उपकार करने आदि भाव तनिक मात्रा में भी नहीं हो । इस क्रिया को करते समय अपने साथ काम करने वाली नर्स, हरिजन बहिन आदि सभी को प्रभु सेवा मे सहयोगी मानकर अपने समकक्ष आदर-सम्मान देवे । ऐसा करने से निष्काम कर्मयोग की भूमिका सिद्ध होती जाती है । यहाँ स्व-कर्त्तव्य में कामना रहित होकर भली प्रकार जुड़ जाना होता है । यहाँ पर न कोई बड़ा है, न छोटा; न कोई अफसर है, न कोई चपरासी; व्यक्ति की सेवा नही, स्व-कर्त्तव्य की सेवा है ।

ठीक इसी प्रकार अन्य क्षेत्रो में कार्य करने वाली महिलायें भी अपना जीवन ढाल लेवे । इतनी सावधानी आवश्यक है कि जिस दिन उक्त प्रकारेण कार्यरत न हों,

उस दिन प्रमाद या आलस्यवश नित्य वेदविहित दिनचर्य्या का उल्लंघन कदापि नही करना चाहिये। नियम-विधि अनुसार यथासम्भव मौन रखते हुए निःसंकल्प होकर भजन मे तल्लीन रहे। साथ साथ अनुशासन भा पूरा पूरा रखे। भी

माता शरीर से स्वतः ही सेवा अत्यधिक होती है। व्यवहार में उपरोक्त विधि से "स्व कर्त्तव्य रूप" साधन को अगीकार करने व कार्यान्वित करने से वे निश्चय ही अतिशय कल्याण की भागी वन जाती है।

(३०)

सन्तान नियोजित मात्रा में ही हो ऐसा शास्त्रों का निर्देश युगयुगान्तरो से चला आ रहा है। आज के शासक भी 'फेमिली प्लानिग' (**परिवार नियोजन**) के अन्तर्गत 'दूसरा बच्चा अभी नहीं, दो के बाद कभी नही', 'तीन बच्चे बस' आदि अनेकों नारों द्वारा सीमित परिवार बनाये रखने का भरपूर प्रचार करते है। शास्त्र-विहित वर्तने वाले पुरुषों पर दो या अधिकतम तीन संतानोत्पादन पश्चात् गार्हस्थ्य सुख से पूर्णत. उदासीन होकर संयमपूर्वक ब्रह्मचर्य पालन करने का विधान है। ऐसे ब्रह्मचर्य पालन करने वाले पुरुषो को तत्त्व की प्राप्ति सुलभ्य है।

ऐसे साधक अपने यौवन काल में धनोपार्जन पश्चात् विचार-अर्जित वैराग्याधीन वानप्रस्थ अथवा सन्यास आश्रम में प्रवेश कर जाते है। कर्मयोगी जहाँ अपनी सम्पत्ति की

समुचित व्यवस्था करके शनैः शनैः उपराम होता है तहाँ साख्ययोगी प्रबल वैराग्याधीन सर्व परिस्थितियों व सुखों को एक दम लात मारकर निवृत्ति-मार्गारूढ़ हो जाता है, किसी भी प्रकार का आगा पीछा नही सोचता। कर्मयोगी द्वारा की गई समुचिन व्यवस्था, उसकी गृहस्थी में अगर सन्तान अयोग्य अथवा नालायक हो तो भी,किसी प्रकार की विशेष हलचल या उत्पात नही होने देगी। परन्तु सांख्ययोगी द्वारा उदासीनतावश नियोजित रूपेण सम्पत्ति व्यवस्था के अभाव मे उपर्युक्त परिस्थिति अति उग्र गृहकलह का रूप धारण कर लेगी। साख्ययोगी किसी भी सूरत में ऐसी घटनाओं से तनिक भी विचलित नही होगा, यहाँ तक कि उसके मन में किञ्चित् मात्रा में फुरणा भी नही होगी, अगर होवे तो उसके सांख्य-योग में न्यूनता ही मानी जावेगी। सांख्ययोगी की तो कथा ही महान् है, वह तो सर्वदा आत्मानन्द में ही विचरता है अतः सर्वत्र सुख ही सुख अनुभव करता है।

श्री भगवान् ने अपने श्रीमुख से श्रीमद् भगवद्गीता ५-२ में जो 'कर्मयोग' को 'कर्म सन्यास' से विशेष्य (श्रेष्ठ) बतलाया है वह सासारिक फल को लेकर ही बनाया है। व्यक्ति रूप में तो सांख्ययोगी ही श्रेष्ठ होता है।

कर्मयोगी अपनी सम्पत्ति का विभाजन कुछ निम्न प्रकार से करेगा। मान लो उसके पास पाँच लाख की सम्पत्ति है

और उसके एक लड़की व दो लड़के है। सभी वयस्क है। लडको का विवाह भी हो चुका है। लड़की का विवाह करना है।

वह एक एक लाख की सम्पत्ति दोनों लड़कों को अपनी जीविका उपार्जन हेतु दे देगा। एक लाख रुपया अपनी लड़की के विवाह आदि खर्च के लिये सुरक्षित रख देगा। एक लाख रुपया से अपने भाइयों, बहिनों व अन्य इष्टजनों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उनकी समुचित व्यवस्था कर देगा। शेष एक लाख की व्यवस्था कुछ इस प्रकार करेगा कि उसके ब्याज आदि से स्व व स्व-पत्नि का वानप्रस्थ जीवन सुखेन निष्कंटक चलता रहे, यथा साध्य दान पुण्य भी होता रहे एवं संसार से महाप्रयाण करने पर वह धन किसी सार्वजनिक कार्य में (औषधालय, कुआ, विद्यालय, अनाथालय आदि) अथवा अपने ही समाज के कमजोर भाई बहिनों के उत्थान हेतु समर्पित हो जाय।

प्रभु से जो तूं मिलना चाहे, मिल पहले इन्सान से।
कैसे मिल सकेगा मालिक, बिन पूछे दरवान से ॥

(३१)

माथे पर मुकट देख, चन्द्रका चटक देख,
छबि की लटक देख, रूप रस पीजिये ॥१॥
लोचन विसाल देख, गले गुंजमाल देख,
अधर सुलाल देख, चित्त चाव कीजिये ॥२॥
कुण्डल हलन देख, अलके पलन देख,
पलके चलन देख, सर्वस्व दीजिये ॥३॥
पीताम्बर घेर देख, मुरली की घोर देख,
सांवरे की ओर देख, देखवोई कीजिये ॥४॥

(३२)

प्रीति के जात नहीं, लोभी के बात नहीं,
सुगन के गात नहीं, साथ नहीं चोर के ॥१॥
मुरदे की आस नहीं, केर के पलास नहीं
पथ मांही वास नहीं, रूप नहीं सौर के ॥२॥
मार्ग मांही मोज नहीं, सुख मांही रोज नही,
रुई मांही बोज नहीं, ज्ञान नहीं किशोर के ॥३।
देवीदत्त कहे सही, मूसल के अगी नहीं,
ब्राह्मण के धणी नहीं, शिर सींग नहीं मोर के ॥४॥

(३३)

राम सम ध्यान नहीं, गीता सम ज्ञान नहीं,
विद्या सम दान नहीं, प्यारे नहीं प्रान से ॥१॥

गंगा सम नीर नहीं, भीस्म सम वीर नहीं,
धेनु सम क्षीर नहीं, तेज नहीं भान से ।।२।।
वारस सम सीत नहीं, विप्र सम पुनीत नहीं,
विदुर सम नीत नहीं, मोज नहीं मान से ।३।
कहे कवि देवीदत्त, कामी सम दुःखी नहीं,
ज्ञानी सम सुखी नहीं, पुण्य नहीं अन्न दान से ।४।

(३४)

भगवान् के अवतार चार प्रकार के होते है ।—

(१) आविर्भाव– जैसे लोहा पत्थरादि के घिसने से आगि प्रगट हो जाती है, वैसे ही आसुरिसम्पदा एवं दैविसम्पदा के प्राणियो में घर्षण द्वारा पाप फैल जाना है–परित्राणायादि (गोता) तब आविर्भावावतार होता है रामकृष्णादि ।

(२) आवेश- गर्मजल मे अग्नि के आवेश कि तरह सहस्त्रार्जुन के द्वारा जमदग्नि ऋषि को मार देने पर ,परशुरामजी के अन्दर चार कला का आवेश ।

(३) प्रवेश– तपे हुए लाल लोहे में अग्नि का प्रवेश, वैसे द्रौपदी के पुकारने से वस्त्र में भगवान् का वस्त्र रूप से प्रवेश

(४) स्फुरण. दो बादलों के टकराने से बिजली चमकती है वैसे प्रहलाद के आस्तिक भाव एवं हिरण्यकश्यपु के नास्तिक भाव के टकराने से थम्भे मे स्फुरण होना ।

समुद्र मंथन से निकले चौदह रत्न

लक्ष्मी जी,[1] सुरा,[2] कामधेनु,[3] विष हलाहल,[4] चन्द्रमा,[5] कौस्तुभमणि,[6] शंख[7] धन्वन्तरी जी,[8] उच्चैश्रवा,[9] धनुष,[10] ऐरावत,[11] पारिजात पेड़[12] (कल्प वृक्ष) रंभा[13] अमृत[14] ।

(३५)

भजन (चौबीस अवतार)

नारायण[4], नारद,[1] हरि,[22] कपिलदेव,[5] श्रीराम[19] ।
हंस,[18] हयग्रीवः[21] मोहिनी,[13] दत्तात्रेय[6] सुख धाम ॥१॥
नरसिंह,[14] वामन,[15] व्यासजी,[17] ऋषभदेव,[8] कौमार[3] ।
यज्ञपुरुष,[7] धन्वन्तरि,[12] बुध,[23] कल्कि[24] अवतार ॥२॥
पृथुराजा,[9] वाराह[2] पुनि, श्री कृष्णचन्द्र[20] भगवान ।
परशुराम,[16] मत्स्य,[10] कमठ,[11] श्री भागवत प्रमान ॥३॥
नमों चौबीस अवतार को, सायं प्रातः हिय धार ।
पाप नशे बहु जन्म के, ज्ञान होय भव पार ॥४॥

(३६)

भजन(द्वादश ज्योति लिंग)

सोमनाथ[1] सौराष्ट्र में, काशी में[2] विश्वेश ।
महाकाल[3] उज्जैन में, शिवालय[4] घुश्मेश ॥१॥
भीमशंकर[5] डाकनी, सेतुबन्ध[6] रामेश ।
त्र्यम्बक[7] गौतमी तीर पर, दारुक वन नागेश[8] ॥२॥

मल्लिकार्जुन[९] श्री शैल पर, हिमगिरि पर केदार[१०]।
चिता भूमि स्थान में, वैद्यनाथ[११] भव हार ॥३॥
ओंकार[१२] परमेश्वर, रेवा तट दो नाम।
द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग को, सदा करूँ प्रणाम ॥४॥
श्रद्धा सहित जो ध्यावहि निशिदिन में दो बार।
सर्व पाप से मुक्त हो, पावे सिद्धि अपार ॥५॥

(३७)

अवतार की १६ कला, उनके नाम एवं कार्य

कला का नाम	कला का कार्य
१—दृष्टिकला दिव्य दृष्टि	सुभद्रा को अभिमन्यु दर्शन व ब्राह्मण के आठो पुत्रो की प्राप्ति।
२—अदृष्टिकला - गायब हो जाना	रासलीला के मध्य छिप जाना।
३ -स्पर्शनी कला - अन्त.करणो मे-प्रवेश करने की योग्यता	कृष्ण जन्म के समय पहरेदार आदियों को मूर्छित कर देना। दूसरो के मन की बात जान लेना।
४—आकर्षणी कला - दूसरो के चित्त-को खैच लेना	वन्सी के द्वारा सब को आकर्षण कर लेना।
५— बहुरूपिनी कला - बहुरूप होना	रासलीला मध्य।
६— रसनी कला - बिना भोजन रस अनुभूति एव तृप्ति	द्रोपदी के यहाँ दुर्वासा जी को षट्रस जन्य तृप्ति।
७— करणी कला - अलौकिक कार्य	यशोदा द्वारा बन्धन समय रस्सी का दो अगुल (अहता, ममता) कम होना।

८—गमनी कला - शीघ्र गामी	द्रोपदी के चीर हरण समय शीघ्र पहुँच जाना।
९—उत्पादिनी कला - नवीन सृष्टि की उत्पत्ति	ब्रह्मा के छिपाये जाने पर ग्वालो व बछड़ो की उत्पत्ति।
१०--बलनी कला - अद्भुत शक्ति-शालिनी	पूतना आदि बध।
११--वाचिनी कला - वचन सिद्धि एव वचन से मोहित कर लेना	यशोदा एवं गोपियो से मक्खन आदि मागते समय मोहित कर देना। सुदामा को दरिद्री होने के वचन व पुन: धनाढ्य बना देना।
१२--श्रावणी कला - बिना यन्त्र दूर की बात सुन लेना	द्वारका मे द्रोपदी की चीर हरण पुकार सुन लेना।

("कीडी के पग नेवर बाजे सोई सायब सुनता है।")

१३--जलतरगिनी कला - जल मे पृथ्वी की तरह चलना	कालिये नाग को नाथना।
१४--अनुमानिनी कला - तीनो कालो की बात जान लेना	युद्ध के समय अर्जुन को विराट् रूप मे सब की मृत्यु दर्शाना।
१५--सत्सकल्पिनी कला - नियम के विरुद्ध केवल सकल्प से कार्य करने की शक्ति	मयुरध्वज के लडके ताम्रध्वज को जीवित कर देना।
१६--स्वतन्त्री कला	पर अबाधित।

(३८)

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा ॥

(३९)

सूक्ष्म दृष्टि से **भगवद्-दया व भगवद्-कृपा** मे मार्मिक भेद होता है। प्रभु जिस प्रिय पर दया करते हैं उसके सासारिक भोग-साधनो मे वृद्धि कराते

हुए शनैः शनैः उसे अपनी तरफ खींचते हैं, परन्तु जब कृपा करते हैं तो उसका सर्वस्व हरण कर लेते है और उस भक्त को अविलम्ब अपना लेते हैं। इसीलिये संत तुलसीदास जी प्रभु से कृपा ही मांगते है—

अब प्रभु कृपा करहु एहि भांती। सब तजि भजनु करौं दिन राती॥

(४०)

खेचरी खड़ग नाख दे, भोग रोग रो मूल।
स्वाद छोड़ अणस्वाद झाले, वाद विवाद सूं दूर॥
भूचरी परस्यां भरम भागिया, मिटिया भरम अंधारा।
रोम रोम में रम रह्या, परस्या प्रीतम प्यारा॥
चाचरी चिलत में थकी, जा मिली निज जोती।
त्रिकुटी रे छाजे बैठ, चुगिया माणक मोती॥
अगोचरी अरथ कर, पद पाया पूरा। अगोचरी
और शब्द भावे नहीं, बाजे अनहद तूरा॥
अर्ध-ऊर्ध सूं उन्मुनी, टली काल री फाँसी।
जा मिली निज पीव सूं, ओलख्या अलख अविनासी॥
जिह्वा जठे खेचरी बोले, भूचरी नासिका जाण।
चाचरी त्रिवेणी ठिकाने कहिये, अगोचरी अनहद ठाण॥
उन्मुनी मुद्रा दशम द्वार में, यूं वाणिज्य व्यापार कर लीजे।
कह कबीर सुणो भाई साधो, आपरी निगह आप ही कर लीजे॥

(४१)

इश्क री आशिक जाणे बात।
सद्गुरु बाण शब्द रो मार्यो, घूम रह्यो दिन रात॥टेर॥
गूंगे रे मन सपनो आयो, सूतो स्वर्ग में रात।
ऊठ सवारे कह्यो नहीं जावे, सैन करे परभात॥१॥
अन्तरगत की किसको कहूं, सोही अभेदू साथ।
सज शृंगार बैराग भभूती, प्रेम ठीकरो हाथ॥२॥

देश शहर घर बार तज, करूँ परदेशी रो साथ।
डोरी लागी डोर नहीं टूटे, जाणे दीनानाथ ॥३॥
निश दिन रमूँ हजूरी रे भेला, करूँ निरगुण को साथ।
पान फूल अनुभव रा चढ़ाऊँ, घाल मिलूँ गल बाथ ॥४॥
शब्द महल में हिलमिल रमिया, हंस हुया इक जात।
कहे हरीराम खेलो डाव मुक्तिरो, मिल्या ब्रह्म विज्ञात ॥५॥

(४२)

फकीरी जीवित थूके मसान।
कर लेना निज छाण, कर लेना ब्रह्मज्ञान ॥टेर॥
छव दर्शन* छत्तीसूँ पाखण्ड, लग रही खैंचाताण।
उलट पड़े इण जुद्ध के माँहीं, जद ही पड़े पिछाण ॥१॥
शीश उतार लड़े धन सूरा, धड़ सूँ जूझे आण।
तपसी ताप सहे इण तपरी, कायर तजै प्राण ॥२॥
आगम निगम दो बाणी जग में, ऊभी करे बखाण।
राजा परजा दर्शन आवे, धिन जोगो थारो पाण ॥३॥
अनन्त कोटि साधुजन तापै, नव नाथां कर जाण।
आठूँ पहर सोलहवाँ गावे, पद पहुँचे प्रयाण ॥४॥
ब्रह्म मिलन रो पट्टो लिखायो, दिल बिच ऊगा भाण।
हरीराम वैरागी बोले, गुरु मिल्या चतुर सुजाण ॥५॥

ॐ गुरु शरणम् गुरु शरणम् गुरु शरणम्।
